CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

16.1

मेरे साथी

२०२३
६-१४-८३

★

—महात्मा भगवानदीन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महात्मा

वर्ग संख्या 14-23 प्राप्ति-संख्या 2322

ग्रन्थ-कार्ड

श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान

ग्रन्थागार

नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम मेरे साथी

लेखक महात्मा भगवानदीन

	लेनेवाले	लेनेवालेका	लौटानेकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

2623.

8.9823

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरे साथी

२५२३
दि. १४८३

लेखक
महात्मा भगवानदीन

★

यह पुस्तक स्व० जे० एल० जैनी ट्रस्ट-फंड की आर्थिक सहायता से प्रकाशित की गई है।

★

भारत जैन महामण्डल, वर्धा
फ़रवरी १९५२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक :
जमनालाल जैन, मंत्री
भारत जैन महामण्डल, वर्धा

प्रथम संस्करण : २०००
फरवरी १९५२
मूल्य : एक रुपया

मुद्रक :
जमनालाल जैन
व्यवस्थापक, श्रीकृष्ण प्रि. वर्क्स, वर्धा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक की ओर से

महात्माजी की यह दूसरी पुस्तक, 'मेरे साथी' पाठकों तक पहुँच रही है। इसके पहले 'मारने की हिम्मत' कहानी संग्रह प्रस्तुत कर चुके हैं।

महात्माजी देश के उन कर्मठ और निष्पृह विचारकों में से हैं जिन्होंने जीवन भर दिया ही दिया, कहा कुछ भी नहीं। वे धर्म, समाज, साहित्य, राजनीति के विद्वान ही नहीं, ध्येयवादी स्पष्ट विचारक और मानव-मनोविज्ञान के आचार्य हैं। वे अब वृद्ध हो गए हैं। हमने विचार किया कि महात्माजी ने जीवन में जो कुछ लिखा है और अनुभव किया है वह यदि क्रम-बद्ध प्रकाशित हो जाय तो इससे समाज और देश का बहुत हित होगा। इसके लिए हमने एक अपील भी निकाली जिसमें इनकी १६ पुस्तकों के प्रकाशन की योजना है।

ये संस्मरण उनके साथियों के हैं। संस्मरण लिखने की परम्परा हिन्दी में बढ़ती पर है जरूर, पर महात्माजी ने इनके लिखने में जिस ढंग, शैली को अपनाया है वह हिन्दी के लिए सर्वथा मौलिक है। उन्होंने एक जगह लिखा भी है कि आदमी को ऊपर ऊपर से देखने की उनको आदत नहीं है। इन संस्मरणों में बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध का जैन समाज का एक प्रवृत्ति परक इतिहास हमारे सामने आ जाता है और उन गुणों की ओर वह पाठक को आकर्षित करता है जो एक समाज सेवक में होना आवश्यक हैं।

इस पुस्तक की छपाई का खर्च स्व० जे. एल. जैनी ट्रस्ट के ट्रस्टी श्रीमान् रा. ब. सेठ लालचंदजी सेठी उज्जैन तथा श्री. जौहरीलालजी मित्तल इन्दौर ने प्रदान किया है। इसके लिए भारत जैन महामंडल ट्रस्ट तथा ट्रस्टियों का अनुगृहीत है।

महात्माजी की और भी कुछ पुस्तकें पाठकों तक पहुँचाने के प्रयत्न में हैं।

वर्धा,
२७–२–५२

—प्रकाशक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुक्रम

		पृष्ठ
१.	भाई अजितप्रसादजी	१
२.	अर्जुनलाल सेठी	१२
३.	गुरु गोपालदास	२०
४.	बाल जैनेन्द्र	२५
५.	रामदेवी बाई	३७
६.	बाबू दयाचन्द्र गोयलीय	१००
७.	जुगमन्दरलालजी	१०८
८.	वीरचंद गांधी	१२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरे साथी—

स्व० रा. ब. जुगमन्दरलालजी जैनी
बैरिस्टर, हाईकोर्ट जज, इन्दौर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

: १ :

भाई अजितप्रसादजी

२२ जनवरी सन् १९१० को जयपुर में पहले पहल मेरी जान-पहचान बाबू अजितप्रसादजी से हुई। वहां उनके साथ उनकी बड़ी बेटी सरला भी आई हुई थी। २२ जनवरी सन् १० को समाज में मेरी क्या जगह थी यह सवाल अगर कोई मुझसे पूछने लगे तो मैं यही जवाब दूंगा कि कहीं कुछ भी नहीं। ऐसे न-कुछ आदमी को अजितप्रसादजी जैसा समाज में प्रतिष्ठित आदमी दस मिनिट में इतना अपनाले कि दूसरे ही महीने में इस बात की तैय्यारी हो जाय कि मेरा और अजितप्रसादजी का कुटुंब साथ-साथ यात्रा के लिए निकल पड़े, तब सिवा इसके क्या कहा जा सकता है कि अजितप्रसादजी का मन शीशे की तरह साफ था। स्वच्छ और निर्मल मन से इतना ही नफा नहीं होता कि दूसरे उसकी स्वच्छता को जानकर उसकी ओर खिंचें, पर यह भी होता है कि वह स्वच्छ मन दूसरे के मन में प्रवेश करके उस को समझ लेता है और हो सके तो उसे कुछ स्वच्छता भी देता है और फिर दो दिल एक होने में देर नहीं लगती।

अजितप्रसादजी की बेटी सरला उन दिनों बीस बरस की रही होगी। वह नाम की सरला नहीं, स्वभाव की सरला थी और आज के दिन तक वैसे ही सरल स्वभाव की बनी हुई है। जिस यात्रा की बात मैंने ऊपर कही है उस में वह साथ थी। उस यात्रा का जिक्र इस लेख में शायद ही कुछ रहे, वह अलग लेख का विषय है जिसका जिक्र फिर कभी किया जायगा।

हां तो बाबू अजितप्रसादजी ने अपने स्वच्छ मनका मेरे मन पर जो असर डाला वह उनके स्वर्गवास होने तक कायम रहा और उनसे मेरी मित्रता और निकटता दिन दिन बढ़ती ही रही। ऋषियों ने सज्जन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की मित्रता की उपमा बारह बजे के बाद की परछांई से दी है, जो शुरू में बहुत थोड़ी और धीरे धीरे बढ़ कर इतनी बढ़ जाती है कि उसका अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता। पर अजितप्रसाद जी के मामले में तो इससे भी बढ़कर बात हुई। उनसे तो शुरू में ही इतनी गहरी मित्रता हो गई मानों बरसों की हो। वह धीरे धीरे आगे बढ़ी या नहीं इसका तो अंदाजा लगाया नहीं जा सकता, क्योंकि वह दस मिनिट में ही इतनी गहरी हो गई थी कि उससे आगे बढ़ने के लिये कोई जगह ही न बच रही थी। तब फिर यही कहा जा सकता है कि वह मित्रता स्वच्छसे स्वच्छतर हुई और फिर स्वच्छतम होती चली गई। इसलिए मेरी नजरों में तो भाई अजितप्रसादजी सज्जन कोटिसे निकलकर महा सज्जन कोटिमें आ जाते हैं।

ऋजुता अगर सचमुच धर्मका अंग है तब तो मैं यह कहूंगा कि यह गुण भाई अजितप्रसादजी में इस हदको पहुंच गया था कि उस हद तक पहुंचा हुआ मुझे किसी दूसरे में देखने को नहीं मिला। अब भी मेरी आँखों के सामने वह दृश्य आजाता है, जब वह बहुत बड़ा नुकसान कर डालने पर नीची निगाह कर अपने नौकर पर इस तरह गुस्सा होते थे— "देखो भाई, तुम हमारा कितना नुकसान कर देते हो, तुमको सोचना चाहिए कि तुम इस बात का पैसा पाते हो कि हमारा नुकसान न होने पावे। अब जब तुम इस तरह नुकसान कर देते हो तो अब तुमही बताओ' मैं तुम्हारा क्या करूं, बस जाओ, अपने काम में लगो; आइन्दा अगर ऐसा हुआ तो अब तुम ही बताओ मैं तुम्हें कैसे रख सकूंगा।" यह था भाई अजितप्रसादजी का जोर का गुस्सा। पढ़ने वाले यह खूब समझलें कि यह शब्द भी बड़ी धीमी आवाज में कहे जाते थे। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि नीची निगाह करके कितने ही जोर के गुस्से में निकले हुए शब्द ऊंची आवाज के हो ही नहीं सकते।

ऋजुता यानी सरलता के साथ साथ दूसरी बात जो भाई अजितप्रसादजी में थी वह थी अपनी कमी को फौरन मान लेना और मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि सरलता का गुण और कमी स्वीकार करने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का गुण दोनों सहगामी हैं यानी जिसमें एक होगा उसमें दूसरा होगा ही। यह गुण तो उनमें इतना तरक्की कर गया था कि उनके पीठ पीछे भले ही कोई उनकी बुराई करले पर उनके सामने बुराई करने से पहले तो वह भाई अजितप्रसादजी के मुंह से ही वह बुराई सुन लेगा जिस बुराई को उनके सामने उनसे करने को आया है। अब बताइए कहनेवाला करे तो क्या करे। अपनी बुराई आप कहने का गुण ऐसा गुण है जिसके लिए गृहस्थी तो क्या साधु भी तरसते हैं। अगर कोई मुझसे पूछे तो मैं यह कहूँगा कि अकेला यही एक गुण अनगिनत पापों को काटने के लिए काफी है। यह गुण है भी तो ऋजुता यानी सरलता का सहभागी और यह ऋजुता धर्म के दस लक्षणों में तीसरे नंबर पर आर्जव नाम से प्रतिष्ठित है। मैं तो ऐसा मानता हूं धर्म के दस लक्षणों में से अगर कोई एक भी धर्म आदमी अपना ले तो बाकी के नौ किसी न किसी अंश में उस आदमी के अन्दर आ ही जाते हैं। क्योंकि यह दसों गुण मिल कर धर्म के लक्षण कहलाते हैं। हां यह दूसरी बात है कि किसीमें कोई एक गुण अपनी मर्यादा से ज्यादा हो जाय और इसलिये दूसरे गुणों को चमकने का मौका न दे। भाई अजितप्रसादजी में आर्जव गुण था इसलिए क्षमा अपने आप उत्से उत्तर और उत्तम की तरफ बढ़ती चली जा रही थी। यह दूसरी बात है कि आर्जव के चमकते हुए प्रकाश में वह हरएक को दिखाई नहीं देती थी। मैं आज इस बात को समझ पाया हूं कि उनका वह नीची निगाह करके गुस्सा करना इसी आर्जव गुण का सहगामी गुण था।

भाई अजितप्रसादजी को अपनी इन्द्रियों पर खासा काबू हासिल था। और इसी वजह से उनके मनके घोड़े की लगाम उनके विवेक के हाथ से कभी निकल नहीं पाती थी। इतना ही नहीं, कभी ढीली भी नहीं हो पाती थी। जिस वक्त वह विधुर हुए उस वक्त उनकी ऐसी उम्र नहीं थी कि उनकी जगह कोई और आदमी होता तो दूसरा विवाह न करता। पर उन्होंने कभी दूसरे विवाह की बात सोची नहीं। इतना ही नहीं उस ओर से उन्हें घृणा ही होगई थी। एक दिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्होंने हमसे दिल्ली की एक घटना सुनाई और वह घटना यह थी कि उनके सामने एक लड़की सजा कर इसलिए लाई गई कि वह उसको अपनी संगिनी वनाने के लिए पसंद करलें। इतना ही नहीं उसे कुछ इस तरह सिखाकर भेजा गया था कि वह अपने हावभावों के जरिये भी उन पर असर डाले और उसने वैसा किया भी। इसी सम्बध में उन्होंने हमें आगे वताया कि घृणित काम से मुझे उस लड़की से ही नहीं, वल्कि समाज की इस कुप्रथा से इतनी घृणा पैदा हुई कि मैं बरदाश्त न कर सका। और विला कुछ कहे मैं वहां से उठकर कुछ इस ढंग से चला कि उस लड़की को मालूम हो जाय कि मैं उसको कितनी गिरी नजर से देखता हूं। उन्होंने हमें इसी सिलसिले में यह भी बताया कि इस सब वेहयायी का असर मेरे ऊपर यह हुआ कि मेरी वासना जागने की बजाय और सोगई। ये थे हमारे बाबू अजितप्रसादजी। इतना मनपर अधिकार न होता तो अपनी संगिनी के छोड़े हुए छोटे बच्चे को वे मां से भी ज्यादा मोहब्बत से न पाल सकते। हमने उन्हें रात के दो-दो तीन-तीन बजे उठकर स्प्रिटलैंप पर दूध गरम करके बच्चे को दूध पिलाते देखा है। वासना दबकर कितना अच्छा रूप ले लेती है, यह एक ऐसा पाठ है, जो भाई अजितप्रसादजी के जीवन से लिया जा सकता है। यहाँ यह तो समझ लेना ही चाहिए कि यह सब आर्जव गुण के सहगामी मार्दव गुण का चमत्कार था, जिसने भाई अजितप्रसादजी के मन में बैठी वासना की कीचमें से पितृ-प्रेम का, पुत्र-प्रेम का कमल खिला दिया था। उनके इस गुण की कद्र वे ही बच्चे जान सकते हैं जिन्हें वासना में डूबी विमाताओं से पाला पड़ता है।

हमने भाई अजितप्रसादजी को अपने नाना की सेवा करते देखा था। उस सेवा का जिक्र तो हम करेंगे ही, पर यहाँ इतना कहे देते हैं कि हम उस वक्त भाई अजितप्रसादजी की उस सेवा को यही समझे थे कि यह अपनों की सेवा है। पर जब उन्होंने ब्र० शीतलप्रसादजी की उसी तरह सेवा की तब हम समझे कि सेवा उनका स्वभाव था। हम तो ऐसा मानते हैं कि यह स्वभाव उन में पैदाइशी था। हो सकता है उनके माता या पिता में से किसी में रहा हो और उन्हें वह तरके में या विरासत में मिला हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर इतना कहे बगैर हम न रहेंगे कि उनके उस स्वभाव को मांझा और चमकाया भाई मोतीलालजी ने। एक बार भाई अजितप्रसाद जी की जांघ में एक फोड़ा निकला। और वह इतना बढ़ा कि चीरे की जरूरत पड़ी। उस चीरे ने भाई अजितप्रसादजी को एकदम हर तरह से नाकाबिल बना दिया। उस वक्त उनकी सेवा भाई मोतीलालजी ने की थी। और वह सेवा भी ऐसी सेवा थी कि मां के सिवाय कोई दूसरा और मुश्किल से ही कर सकता है। बस उसी सेवा ने भाई अजितप्रसादजी के भीतर स्वभाव रूप से सेवा को और भी ज्यादा चमका दिया।

जब उनके नाना बीमारी के बिस्तर पर थे, तब मैं लखनऊ था। और सात दिन बराबर भाई अजितप्रसादजी के साथ रहा। उनके नाना का यह हाल था कि वे होश में रहते हुए भी इतने बेसुध रहते थे कि टट्टी-पेशाब का उन्हें कोई ध्यान ही न था। दो-तीन महीने का बच्चा भी थोड़ा-बहुत इशारा करना सीख जाता है और करता भी है पर वे तो इतना भी नहीं करते थे। उनकी सेवा करना तो मेरे खयाल से एक बार उसके लिए भी मुश्किल होता जो गंदी गलियों में घुसकर नालियों को साफ करता है। उनके नाना टट्टी-पेशाब में लिथड़ कर इस तरह हाथ-पांव फेंकते थे कि उसमें अजितप्रसादजी को भी लिथड़ा देते थे। पर भाई अजितप्रसादजी थे कि उनके माथे पर हम ने कभी कोई शिकन नहीं देखी। इतना ही नहीं उनके होठों पर मुस्कान देखते थे। इस तरह की सेवा उन्होंने एक-दो दिन नहीं, अगर हम भूलते नहीं हैं तो पखवाड़ों और महीनों की। और फिर तुर्रा यह कि जब भी भाई अजितप्रसादजी अपने नाना को गोदी में उठाते थे तो वे इतना चिल्लाते थे और भाई अजितप्रसादजी को इतनी गालियाँ देते थे कि ठिकाना नहीं। उनका भी कुछ कुसूर न था। बुढ़ापे की हड्डियाँ बालकों की हड्डियाँ जैसी नहीं होतीं। वे गोदी में उठाने से दुखती थीं। और मेरे खयाल से बहुत ज्यादा दुखती थीं। तभी तो उनके नाना जोर से चिल्लाकर कहते थे कि कमबख्त तोड़ डाल मेरी हड्डियाँ! मार डाल मुझको। मेरी जान लेकर रहेगा। अब पाठक सोचें और बताएँ कि उन में से कितनों में यह हिम्मत है कि वे ऐसे बीमार की सेवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर सकें। हम तो समझ ही नहीं पाते कि रातभर पंखे के तले मुलायम गद्दोंपर सोनेवाले अजितप्रसादमें सेवा का यह गुण किस तरह किस जगह जगह बनाकर रहता था। जो इस तरह की सेवा कर चुका हो उसने ब्र० शीतलप्रसादजी की सेवा किस तरह की होगी इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। वह सेवा हमारी देखी हुई नहीं है, इसलिए उस बारे में हम कुछ नहीं लिख सकते। पर हम यह खूब जानते हैं कि ब्र० जी को किसी और जगह इतनी अच्छी सेवा नहीं मिल सकती थी।

भाई अजितप्रसादजी ऐसे बुरे युग में पैदा हुए कि जब हाथ का मैल पैसे का दान ही दान माना जाता है; और जो पैसा कैसे इकट्ठा किया जाता है और किया जा रहा है उसके बारे कहना न कहना ही अच्छा है। और जिस पैसे के बल पर जो सेवा खरीदी जाती है सेवा करनेवाले और जिसकी सेवा की जाय दोनों के लिए कितनी दुखदायी होती होती है इस के बारे में भी कहना न कहना ही अच्छा है। ऐसे पैसे का दान दान में गिना जाय हमें तो यह भी नहीं सुहाता। पर करें क्या! इस युग में जब इस तरह की हवा चल पड़ी है तो न सुहाते हुए भी उसको दान तो मानना ही पड़ता है। किसीने कभी यह सोचने की कोशिश ही नहीं की कि पैसा सेवा नहीं कर सकता। इतना ही नहीं, वह सेवा खरीद भी नहीं सकता। सेवा बड़े ऊंचे दर्जे की चीज़ है। वह खरीदी जाती ही नहीं, वह खरीदी जा भी नहीं सकती। जो पैसे से खरीदी जाती है वह होती है दासता। दासता दुखदायी होगी ही। सेवा तो धार्मिकता के पेड़ का फल है, पर वह सुखदायी न हो ऐसा कैसे हो सकता है? हम यह भी मानने को तैयार नहीं कि भाई अजितप्रसादजी सेवा करते हुए दार्शनिकों की सेवा-दार्शनिकता पर ध्यान देते हों या सेवा की गहराई जानकर उसमें लगते हों। वह तो उनका स्वभाव बन गई थी और वह दूसरों के इसी तरह काम आती थी जिस तरह माता का दूध बच्चे के काम आता है या पेड़ों के फल आदमियों के काम आते हैं। भाई अजितप्रसादजी जितना सेवा का दान कर गए उसका मूल्य आंका जाय तो क्या कोई आंक सकता है? पर उस सेवा का लेखा-जोखा रखने का रिवाज इस युगमें तो है नहीं। पहले युगों में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi.

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहा या नहीं इसे कौन जाने ! हमें तो ऐसा मालूम होता है कि इस का हिसाब उस दिल में पूरा लिख जाता है जिसकी सेवा की जाती है तभी तो भाई अजितप्रसादजी आये दिन भाई मोतीलालजी के गीत गाते रहते थे, जिन्होंने फोड़े की बीमारी के समय उनकी सेवा की थी।

भाई अजितप्रसादजी सरकारी वकील रहे, मुन्सफी के लिए भी नामजद हुए, जज भी रहे। एक तरह से विदेशी सरकार के मातहत रहे। और कोई भी आदमी उनकी जिंदगी से यह सबक नहीं ले सकता कि वे देशभक्त भी रहे होंगे। पर आइए हम आपको उनके दिल के उस कोने में ले चलें जहाँ देशभक्ति की चिनगारी हरवक्त भभक उठने की कोशिश करती रहती थी। हम उनके दिलमें घुसे हैं। और उन्होंने हमें वैसा करने दिया है। तभी तो हम आपको उनके दिलके कोने में ले जाने की कोशिश कर रहे हैं। अगर अजितप्रसादजी देशभक्त न रहे होते और सच्चे मानों में सरकार के गुलाम होते तो क्या अर्जुनलालजी सेठी फांसी पाए बगैर रह सकते थे ? और क्या भाई मोतीलालजी जेलखाने की हवा खाए बगैर रह सकते थे ? और क्या दिल्ली के रा. ब. सुलतानसिंह का कुनबा आफत में पड़ने से बच सकता था ? भाई अजितप्रसादजी सरकारी नौकर रहते हुए भी देशभक्ति में इतने सराबोर थे कि बहुत पास रहने वालों को भी वे वैसे नहीं दिखाई देते थे। यह किसे नहीं मालूम कि बहुत तेज रोशनी आंख नहीं देख सकती और बहुत जोर की आवाज कान नहीं सुन सकते। सन् १९१८ में जब पहली लड़ाई जोरों पर थी तब भाई अजितप्रसादजी ने लखनऊ में एक सेवा-समिति की नींव डाली और उस समिति का जाल सारे शहर में तेजी से फैल गया। सेवा-समिति के और कामों में से एक काम था रात को पहरा देना। इस पहरे से पुलिस को आराम था और गृहस्थियों को आम तौर पर और पत्नियों को खास तौर से खुशी थी। पर लखनऊ का डिप्टीकमिश्नर उस समिति में षड्यंत्र का बीज देख रहा था। और वह किसी हद तक सही था। पुलिस यों खुश थी कि उसे पहरा नहीं देना पड़ता था और इसमें शक नहीं कि जब तक यह समिति काम करती रही कोई चोरी हुई नहीं। गृहस्थी यों सुखी थे कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्हें सुख की नींद आती थी। पत्नियां यों सुखी थीं कि अब उनके पति न शराब पीनेकी हिम्मत कर सकते थे और न चकले की तरफ दौड़ सकते थे। क्यों कि पहरे पर रहने वाले मोहल्ले के आदमी थे और वे पूछताछ करते ही थे, इसलिए वे शर्म के मारे वैसी बुराइयाँ न कर पाते थे। सरकार की आंखों में यह समिति यों खटकती थी कि वह समिति धीरे धीरे लखनऊ पर कब्जा करती मालूम होती थी और ऐसा साफ दिखाई दे रहा था कि बहुत जल्दी वैसी समितियाँ बनारस और इलाहाबाद में खड़ी हो जायंगी। हम उन दिनों भाई अजितप्रसादजी के मेहमान थे। पर एक दिन रात के दो बजे से चार बजे तक हम ने भी भाई अजितप्रसादजी के साथ मोहल्ले का गश्त किया था और समिति के काम को अपनी आँख से देखा था। समिति के बढ़ते हुए काम को देख कर डिप्टीकमिश्नर ने उसे इस बिना पर खत्म कर दिया कि समिति के सर्वेसर्वा भाई अजितप्रसादजी इस बात पर राजी नहीं हुए कि वह समिति पुलिस के अफसर या डिप्टी-कमिश्नर के यहाँ अपनी रजिस्ट्री कराए या किसी तरह भी सरकार से अपना संबंध रखे।

सेठी अर्जुनलालजी को जेल से छुड़ाने के लिए उन्होंने जी-तोड़ कोशिश की। पर सरकार भाई अजितप्रसादजी जैसे खतरनाक आदमी की बात कैसे सुन सकती थी।

भाई मोतीलालजी जो दिल्ली के मास्टर अमीचन्द्रजीकी बमपार्टी की पैसे से मदद किया करते थे, भाई अजितप्रसादजी की सलाह से ही आफत में पड़ने से बच सके। बात यह थी कि मास्टर अमीचंद जब पकड़े गए तो उनके कागजों से यह साबित हुआ कि भाई मोतीलालजी उनको पैसा देते थे। मगर इस बात का पता सरकार को उस वक्त चला जब मास्टर अमीचंद को फांसी का हुक्म हो चुका था। और उसी वक्त यह बात भाई मोतीलालजी तक पहुंच गई। बस, भाई अजितप्रसादजी ने फौरन मोती-लालजी से मास्टर अमीचंद के खिलाफ दीवानी अदालत में अपने कर्ज का दावा कर दिया। और जल्दी ही भाई मोतीलालजी को डिक्री मिल गई। भाई मोतीलालजी इस दावे की वजह से उन लोगों की नजरों में तो काफी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गिर गए जो बम पार्टी के मेम्बर थे, पर जो भाई अजितप्रसादजी और भाई मोतीलालजी को पास से जानते थे उनकी नजरों में वे और ऊंचे उठ गए; क्योंकि उनको मालूम है कि उस डिक्री का पैसा कभी वसूल नहीं किया गया। वह तो सिर्फ सरकारी फंदे में फंसने से बचने की चाल थी।

अब हमारे पढ़नेवाले यह जान लेंगे कि भाई अजितप्रसादजी कैसे सरकारी वकील थे और कितने सरकार के खैरख्वाह थे। भाई अजितप्रसादजी जैसे समझदार आदमी और उस धर्म के अच्छे जानकार को जो कर्मों के बंधन और देह की गुलामी को भी बरदाश्त नहीं कर सकता वह धर्म देश की गुलामी बरदाश्त करने दे सकता था ? भाई अजितप्रसादजी की देशभक्ति का जीवन एक अलग विषय है। इस पर यहाँ और ज्यादा चर्चा नहीं की जा सकती। बस इतना कहना काफी है कि भाई अजितप्रसादजी का घर उत्तरी-पश्चिमी षडयंत्रों का हमेशा अड्डा रहा है और वह सिर्फ सरकारी वकील होने के कारण ही किसी जाल में न फंस सके। और जो यह जानता है कि अर्जुनलालजी सेठी और भाई अजितप्रसादजी कितने एक जान दो तन थे उसे हमारी बात समझने में देर न लगेगी। और जो यह जानता है कि आरे के मामले में फांसी जानेवाले मोतीचंद श्री. अर्जुनलाल सेठी के साथियों में से एक थे, उसको तो हमारी बात समझने में ज़रा भी देर नहीं लगेगी। यह थी हमारे भाई अजितप्रसादजी की देश की आजादी की तड़प।

भाई अजितप्रसादजी को एम० ए० की डिग्री एक-दो हफ्ते से ज्यादह ज्ञान-मद के नशे में चूर न रख सकी और यही हाल कानून की डिग्री का हुआ। जिसका नतीजा यह हुआ कि ऊंचे से ऊंचा जज का ओहदा भी उनपर बोझ न हो सका। फिर थोड़ा-बहुत पैसा उन्हें अभिमान के भंवर में डालकर कैसे चकरा सकता था ? वे हमारे साथ जब यात्रा में थे और जब हमारा संघ श्रवणबेलगोल पहुंचा था और जब वहाँ गोमट स्वामी के अभिषेक के साथ साथ सन् १९१० में महासभा का जलसा था, उस समय भाई अजितप्रसादजी सरकार के काफी प्रतिष्ठित ओहदे पर थे और समाज में भी उनकी काफी प्रतिष्ठा थी। पर यह सब प्रतिष्ठाएँ उनकी आत्मा को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जरा भी नहीं छू पाती थीं। तभी तो उन्होंने हमारे यात्रा-संघ में बावड़ी से पानी भरकर लाने का काम अपने जिम्मे लिया था। यह तो यों ही हमने एक बात कह दी। उनकी सारी जिन्दगी, इसी तरह की सादगी से भरी हुई मिलेगी। वे टोप लगाते थे, पर टोपीया साहब बनकर किसी पर रौब जमाने के लिए नहीं, तेज धूप से बचने के लिए। तभी तो वे धोती पहनते थे और टोप लगाते थे। यह मामूली आत्मा का काम नहीं है कि धन, अधिकार और प्रतिष्ठा को इस तरह की समझी जाय मानों उसे यह तीनों मिले ही न हों। भाई अजितप्रसादजी में अगर यह क्षमता न होती तो क्या वे लखनऊ शहर में नंगे पांव चलकर ब्र० शीतलप्रसादजी के लिए अपने हाथ से कुंए से पानी खींचकर ला सकते थे ?

भाई अजितप्रसादजी की कीर्ति—गाथा काफी लम्बी है। हम उसे इस वक्त लम्बाना नहीं चाहते। हम तो इस वक्त सिर्फ यह कहना चाहते हैं कि वे हमारी दृष्टि में अपने जीवन में पूरे सफल रहे। हां, उन्होंने अपने आपको कभी सफल नहीं माना। और वे मानते भी कैसे ? उनके न जाने क्या क्या इरादे थे ! और वे न जाने समाज को किस रूप में देखना चाहते थे। उनमें से कोई भी बात तो पूरी न हुई। समाज भी यह कह सकता है कि वे असफल रहे, क्यों कि समाज तो उसीको सफल समझता है जो समाज में मंदिर के कलश की तरह सब से ऊंचा होकर सब पर चमके। समाज को इससे क्या मतलब कि वह यह सोचे और समझे कि कलश में लगे सोने में, वेश्या के गले में पड़े सोने में, तिजोरी में रखे सोने में और खान में छुपे सोने में कोई अन्तर नहीं होता। अपने पाठकों के साथ साथ हम भी यह मान लेते हैं कि सामाजिक दृष्टि से भाई अजितप्रसादजी उतने सफल नहीं हुए जितने समाज में दूसरे आदमी हैं या हो गए हैं। पर हम यह कहे बगैर न रहेंगे कि उनकी यह असफलता भी इतने ऊंचे दरजे की चीज है कि दसियों समझदारों के लिए ऐसी हो सकती है कि वे उसकी नकल करके अपने आपको धन्य समझें। बात सीधी सी है। वे समाज पैसे को उसी नजर से देखते थे जिस नजर से वे अपने पैसे को देखते थे। समाज में मशहूर होने की यह कला और समाज में सफल होने की यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चालाकी उनको छू तक नहीं गई थी कि समाज में वही मशहूर हो सकता है जो समाजके पैसे को इस तरह बखेरे जिस तरह बच्चे धूल बखेरा करते हैं। वे समाज के एक एक पैसे का ठीक-ठीक हिसाब ही नहीं रखते थे इस बात का पूरा पूरा ध्यान रखते थे कि वह पैसा ठीक-ठीक खर्च हो। फिर वह असफल न होते तो क्या होते? सफल बनाने वाले भाटों तक जब उनके हाथसे समाज की या अपनी एक कौड़ी भी नहीं पहुंच पाती थी तब उनके लिए कौन यह शोर मचाता कि वे अमुक काम में सफल हुए कि वे अमुक काम में सफल हुए।

भाई अजितप्रसादजी की असफलता नामसे पुकारी जानेवाली सफलता हम पाठकों की भेंट करते हैं। उन्हें अगर भली लगे तो अपना लें, न भली लगे तो कमसे कम यह समझ तो लें कि भाई अजितप्रसादजी अपने जीवन में असफल नहीं रहे, सफल ही रहे। और अगर असफल ही रहे तो प्रसिद्धि कमाने में।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

: २ :

अर्जुनलाल सेठी

अर्जुनलाल सेठीको लोगों ने भुला दिया। भुला देना हम बड़ा अच्छा काम समझते हैं। जो समाज अपने चाँदों, अपने सूर्यों को भुलाना नहीं जानता वह जीना नहीं जानता। पर चाँद और सूरजको भुलानेके लिए बड़ी अक्ल चाहिए, बड़ी हिम्मत चाहिए, बड़ा त्याग चाहिए और मर मिटने की तैयारी चाहिए। तुलसीने हिन्दी में रामायण लिखकर वाल्मीकि को भुला दिया, विनोबा ने मराठी में 'गीताई' नामसे गीता का अनुवाद करके मराठी जानकार जनताके दिलसे संस्कृत की गीता भुला दी। पर यह कौन नहीं जानता कि युग-युगमें नये-नये आदमी पैदा होकर पुराने आदमियों को भुलाते जाते हैं। क्या पं० जवाहरलालने पं० मोतीलाल नेहरू को लोगों के दिलों से नहीं भुलवा दिया? इस तरह भुलवाने जाने से बुजुर्गों की आत्मा नयों को आशीर्वाद देती है। पर समाजने अर्जुनलाल सेठी को इस तरह से कहाँ भुलाया? अगर इस तरह से भुलाया होता तो अर्जुनलाल सेठी की आत्मा आज हम सबको आशीर्वाद दे रही होती।

अर्जुनलाल सेठी समाज की ऐसी देन थे, जिन पर चाहे देश के थोड़े ही आदमियों को अभिमान हो, पर उस अभिमान के साथ इतनी तीव्रता रहती है कि जो उस अभिमान में नहीं रहती जो करोड़ों आदमियों में बिखरा होता है। यह किसको पता है कि देश के कितने ही मशहूर घरानों में जब अर्जुनलाल सेठी की चर्चा चल पड़ती है तो सब के मुँह से यही निकल पड़ता है कि उस जैसे बात के पक्के आदमी को दुनिया बहुत कम पैदा करती है, और फिर सबके मुंहसे यही निकल पड़ता है कि होता कि हम भी अर्जुनलाल सेठी जैसे बन सकते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्जुनलाल सेठी को हम आदमी कहें, या देश की आज़ादी का दीवाना कहें, हम अर्जुनलाल सेठी को हिन्दुस्तानी कहें, या आज़ादी के दीपक का परवाना कहें जो अपने २५ वर्ष के इकलौते बेटे को मौतके बिस्तर पर छोड़कर पं० सुन्दरलालके एक मामूली तार पर दौड़ा हुआ बम्बई पहुँचता है, पर बेटे के मर जाने के बाद भी उसे देश का काम छोड़ कर घर लौटने की जल्दी नहीं होती। कोई यह न समझे कि उसे घर से मोह नहीं था, उसे बेटे से प्यार नहीं था, वह इतना प्यारा था, और इतना मुहब्बती था कि उस जैसे पति के लिए पत्नियाँ तरस सकती हैं, उस जैसे बाप के लिए बेटे जानपर खेल सकते हैं, उस जैसे दोस्त के लिए दोस्त खून पसीना एक कर सकते हैं, उस जैसे नेता के लिए अनुयायी सरके बल चल सकते हैं।

अर्जुनलाल सेठी ने त्याग का व्रत नहीं लिया, त्याग किसी से सीखा नहीं, किसी नेता का व्याख्यान सुन कर जोश में आकर उस ने त्याग को नहीं अपनाया। त्याग तो वह मां के पेट से लाया था, त्याग तो उस के जन्म-घुट्टी में मिला था, त्याग को तो उसने मां के स्तन से पिया था, इसलिए त्याग करते हुए उसे त्याग का गीत नहीं गाना पड़ता था और त्यागी होते हुए दूसरों पर त्याग के घमण्ड का रोब नहीं जमाना पड़ता था। त्यागी का बाना पहनने की उसे ज़रूरत ही कहाँ थी ? इन पंक्तियों के पढ़नेवालों में हो सकता है अनेकों ऐसे निकल आवें जो खुले नहीं तो मन ही मन यह कहने लगें कि रुपये तो हम से भी मंगाए थे, पर यह वही बता सकते हैं जो उसके साथ रहे हों कि उसने उन रुपयों का क्या किया था। अर्जुन-लाल सेठी के त्याग की बातें ऐसी हैं जिन को आज भी हम साफ-साफ कहने के लिए तैयार नहीं। चूंकि यह अच्छा ही है कि अभी वे कुछ दिनों और अजानकारीके गड्ढेमें पड़े रहें, पर हम अपने पढ़नेवालोंको किसी दूसरी तरहसे समझाए देते हैं।

कलकत्ताके मशहूर देशभक्त श्री श्यामसुन्दर चक्रवर्ती जो कि चित्त-रंजनदासजीकी टक्करके आदमी थे उनसे मिलनेके लिए हम पं० सुन्दर-लालजीके साथ कलकत्ता पहुँचे। श्यामसुन्दर चक्रवर्ती 'सर्वेंट' नामका एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंग्रेजी दैनिक निकालते थे। हम वहीं उनसे उनके दफ्तरमें मिले। वे बड़ी मुहब्बतसे मिले और ऐसी खातिरदारी की मानो हम उनके माँ-जाये भाई हों। थोड़ी देर बाद वे हमें अपने घर ले गये और १६ वर्ष की लड़कीको दिखाया जो बीमारीसे कांटा हो गई थी और एकदम पीली पड़ी हुई थी। चक्रवर्ती और लड़कीकी मांसे बातों-बातोंमें यह भी पता चला कि उस लड़कीके लिए दवा और दूधका ठिकाना नहीं। तब हमने सोचा कि कुछ रुपये चक्रवर्तीको दे देने चाहिए। हम घरसे 'सर्वेंट' के दफ्तर लौट ही रहे थे कि रास्ते में एक आदमीने चक्रवर्तीके नामका ५०० रु० का चेक दिया, चक्रवर्तीजी हमारे साथ उस चेकको लेकर पासके बेंकमें पहुँचे और ५०० रु० लिये। दफ्तरमें आये। पाँच मिनिटमें पूरे पाँच सौ खतम हो गये। 'सर्वेंट में काम करनेवालोंकी २-३ महीनोंकी तनख्वाह चढ़ी हुई थी। चक्रवर्तीकी नजरमें पहले वह आदमी थे जो देशकी आजादीके काममें जुटे हुए हैं न कि वह बीमार लड़की जो पलंगपर पड़ी थी। हमने जब यह देखा तो यही मुनासिब समझा कि चक्रवर्तीके हाथमें दिये हुए रुपये तो न कभी दवाका रूप ले सकेंगे और न कभी दूध बन सकेंगे। इससे यही ठीक होगा कि दवा खरीद कर दी जाय और दूधका कोई इन्तजाम कर दिया जाय। अगर कुछ देना ही तो लड़कीकी माँके हाथमें दिया जाय। हमने यह भी सोचा कि लड़कीकी मां हिन्दू नारी है और हिन्दू पत्नी है, वह पति देवतासे कैसे छिपाव रख सकेगी और फिर उसके पास भी वह रुपया कैसे बच सकेगा। आखिर ऐसा ही इंतजाम करना पड़ा कि जिससे सब झंझटोंसे बचकर रुपये दूध और दवामें तबदील हो सकें।

बस, इस ऊपरकी कथासे समझ लीजिए कि सेठीजीके हाथमें पहुँचा हुआ रुपया जाने कहाँ-कहाँ और किस तरह बिखर जाता था और किस तरह कम-ज्यादा देशकी आजादीके दीपकका तेल बनकर जल जाता था। सारी संस्थाएँ एक-एक आदमीके बलपर चलती हैं और वह आदमी इधर-उधरसे माँगकर ही रुपया लाता है पर जिनपर वह रुपया खर्च करता है उनपर सौ एहसान जमाता है। इतना ही नहीं, वह तो प्लेटफार्मसे चिल्ला-चिल्लाकर यह भी कहता है कि यह मैं ही हूँ जो इन भूखोंका पेट भर रहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। पर अर्जुनलाल सेठीने इस तरह भीख माँगकर पाये हुए रुपयेंसे न कभी किसीपर एहसान जमाया और कभी प्लेटफार्मसे तो क्या कोनेकतरेमें भी अपने दानकी कोई बात नहीं कही। वह सच्चे मानोंमें त्यागी था। उसने अपनेआपको कभी पैसे का मालिक नहीं समझा, पर समझा तो यह समझा कि वह पोस्टमैन है जो इधर से रुपया लाता है और उधर दे देता है। यहां हो सकता है कि कोई व्यवहार धर्म के रंग में बुरी तरह से भीगा यह सवाल उठा बैठे कि अर्जुनलाल सेठी भीख माँग कर ही नहीं पैसा इकट्ठा करते थे बल्कि इस तरह से भी रुपया जुटा लेते थे जिसे वह जानते थे कि यह रुपया ठीक तरह से हासिल नहीं किया गया। उसे हम क्या कहें, उसे दलीलों से समझाना किसी तरह से नहीं हो सकता। उसे तो हम यही कहेंगे कि वह एक मर्तबा अपने भीतर आजादी की आग सुलगाये और देखे कि उस आग की जब लपटें उठती हैं तो वह क्या करता है और व्यवहार धर्म को कैसे निभाता है। अर्जुनलाल सेठी को निश्चय और व्यवहार धर्म के दोनों रूपों की जानकारी बहुत काफी थी और इस नाते वह पंडित नाम से पुकारे जाते थे। पर वह कोरे पंडित नहीं थे। कोई दिन ऐसा नहीं जाता जिस दिन वह रात को बैठ कर अपने दिन भर के काम का अकेले में पर्यालोचन नहीं कर जाते थे। उन्होंने तो कभी अपने मुंह से नहीं कहा पर उनके पास रहकर हमारा यह अनुभव है कि उनका जीवन सचमुच जल में कमल की तरह था।

जयपुर कालेज से बी० ए० करने के बाद उनके लिए रियासत में नौकरी का मार्ग खुला हुआ था, उनके साथियों और करीबी रिश्तेदारों में से कई उस रास्ते को अपना चुके थे। पर ये कैसे अपनाते, इन्हें नौकरी से क्या लेना था, इन्हें तो उसी राज्यके जेलखानेका मेहमान बनना था।

बी० ए० इन्होंने फारसी लेकर किया था और संस्कृत घरपर सीखी थी। धर्मशिक्षा के मामले में वे चिमनलाल वक्ता को अपना गुरु मानते थे, हमने वक्ताजी के व्याख्यान सुने हैं। श्रोताओं को समझाने की शैली उनकी बड़ी सीधी होती थी और इतनी मन लगती होती थी कि असली बात झट समझ में आ जाती थी। ऐसे गुरुके शिष्य अर्जुनलालजी अगर कुछ ऐसी बातें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कह गये जो बहुतों को मन लगती नहीं जँचती तो उसमें उनका क्या दोष! वे तो सचाई के साथ खोज में लगे और जो हाथ आया कह गये।

वह भरी जवानी में समाज-सेवा के मैदान में कूद पड़े और सबसे पहले उन्होंने वह काम उठाया जिसकी समाज को सबसे ज्यादा जरूरत थी यानी उन्होंने एक शिक्षासमिति की नींव डाली, उसीके मातहत जयपुर में पाठशालाओं का जाल बिछा दिया। अबुलगफूर नामके विद्यार्थी को लेकर समाज में बड़ी खलबली मची, पर समाज पैदायशी त्यागी अर्जुनलाल का क्या बिगाड़ सकती थी और फिर उन्हें एक साथी घीसूलाल गोलेच्छा ऐसे मिल गये थे जिसकी दोस्तीने सेठीजी के त्यागको और भी ज्यादा मजबूत कर दिया था।

यह शिक्षासमिति कुछ दिनों में एक छोटी-मोटी यूनिवर्सिटी का रूप ले बैठी और दूर-दूर के विद्यार्थी उसकी परीक्षा में शामिल होने लगे।

शिक्षाकी सड़क जिस रास्ते होकर गई है उस रास्ते में दासता से मुठभेड़ हुए बगैर नहीं रहती और कैसी भी शिक्षासमिति क्यों न हो दासताकी बेड़ियों में फँसकर वह सच्चे धर्म की तालीम नहीं दे सकती। उनका सच्चा धर्म और स्वाधीनता एकार्थवाची शब्द है इसलिए उसको राज से टक्कर ही नहीं लेनी पड़ती बल्कि उसे उखाड़ फेंकनेकी तैयारी करनी होती। सेठीजीकी शिक्षासमिति आखिर उस मंजिलपर पहुँच ही गई और वह सरकार से टक्कर ले लें कि इन्दौर में श्री कल्याणमलविद्यालय के प्रधानाध्यापककी हैसियत से गिरफ्तार कर लिये गये और कुछ दिनों जयपुर जेल में और कुछ दिनों बैलोर जेल में रहने के बाद बाहर निकले कि जल्दी ही सन् २१ के आन्दोलन में शामिल हुए। पैदायशी त्यागी के लिए और राह ही क्या थी।

हम से उमर में वह दो वर्ष बड़े थे और हमारी उन से जब जान-पहचान हुई तब वह हम से कई गुने ज्यादह धर्म के ज्ञाता थे और कहकर ही नहीं, तो मन ही मन हम उनको धर्म के मामले में गुरु ही मानते थे और हम उनकी बहुत सी बातों की नक़ल करने की कोशिश करते थे। जब वह शिक्षाप्रचारक समिति के काम में लगे हुए थे तब शिष्टाचार के वह आदर्श

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थे। गाली तो उनके मुंहपर फटकने की सोच ही नहीं सकती थी। मामूली पाजी या नालायक़ शब्द भी उन के मुंह से निकलते हमने कभी नहीं सुना, वह अध्यापक भी थे पर विद्यार्थियोंपर कभी नाराज नहीं होते थे। विद्यार्थियों से 'आप' कहकर बोलना हमने उन्हीं से सीखा। यह तारीफ सुनकर भी हमारे पढ़नेवाले एकदम ऐंठ जायें क्योंकि उनमें से बहुतोंने उनको गाली देते सुना होगा। और बुरी-बुरी गालियाँ देते हुए भी सुना होगा। हम उनकी बातोंको झुठलाना नहीं चाहते पर हम तो अर्जुनलाल सेठी के बहुत पास रहे हैं और मुद्दतों रहे हैं। यह गाली देने की बला उन के पीछे 'बैलोर' जेल से लगी जहाँ वह वर्षों राजकाजी कैदी की हैसियत से रहे हैं। वहाँ वे इतने सताये गये थे कि 'बैलौर' जेल से निकलने के बाद उनके बारे में यह कहना कि वह अपने होशहवास में थे जरा मुश्किल हो जाता है। जेल से छूटकर वह देहली गये तब हम वहाँ उन से मिले थे, वे अनेकों काम ऐसे करते थे कि जो इस शिष्टाचार से जरा भी मेल नहीं खाता था जिसको हमने जयपुर में देखा। उदाहरण के लिए हर औरत के पाँव छूने और जगह बेजगह यह कह बैठना कि मैंने भगवान्‌की मूरतका मेहतरों से प्रक्षाल करवाया। उन दिनों सारी बातें कुछ इस तरह की होती थीं कि यह नहीं समझा जा सकता था कि उनको होश-हवास थी। धीरे-धीरे उन्होंने अपनेपर क़ाबू पाया, पर गालियोंपर इस वजह से पूरा-पूरा क़ाबू नहीं पा सके कि कांग्रेस की राजकारी चपेटोंने उनका मरते दमतक कभी पीछा न छोड़ा।

निश्चय के बलपर व्यवहार में वह कभी-कभी इतने पीछे पड़ जाते थे और वह कभी-कभी इतने आगे बढ़ जाते थे कि आम आदमी उन दोनों का मेल नहीं बिठा पाते थे। इस वास्ते कभी-कभी किसी-किसी समझदार के मुंहसे तंग आकर यह निकल पड़ता था कि अर्जुनलाल योगभ्रष्ट हो गया है। हम उनसे हर हालत में मिलते रहे। उस हालत में भी मिले जब उन्हें योगभ्रष्ट की पदवी मिली हुई थी पर हमने तो उनमें कोई अन्तर पाया नहीं। उनकी आज़ादी की लगन ज्यों की त्यों बनी हुई थी, उनका सर्वधर्म समभाव ज्यों का त्यों था और उनकी आज़ादी की तड़प में कोई अन्तर नहीं आया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम तो उसीको धर्म की चोटीपर पहुँचा हुआ मानते हैं जो जिस धर्म में पैदा हुआ हो, उस धर्म के आम लोग उसे धर्मभ्रष्ट समझने लगें और उससे खूब घृणा करने लगें और बन सके तो उन्हीं आम लोगों में से कोई ऐसा भी निकल आवे जो उस धर्मभ्रष्ट को मौत के घाट उतार दे। और क्या गांधीजी कुछकी नजर में धर्मभ्रष्ट नहीं थे और क्या उन्हें धर्मभ्रष्ट होने की सजा नहीं मिली? इस लिहाज से तो सेठीजी अच्छे ही रहे। फिर वे धर्मभ्रष्ट तो रहे पर सजासे बच गये।

अर्जुनलाल सेठी का जीवन सचमुच जीवन है। यह भी कोई जीवन है कि बनी बनाई पक्की सड़कों पर दौड़े हुए चले जाँय। सेठीजी का जीवन कभी पहाड़ी की चोटियों को लाँघता और कभी चक्करदार रास्तों में घूमता, घने जंगल में पगडंडी की परवाह किये बिना जिधर चाहे उधर चल पड़ता। ऐसा करने के लिए नामवरी को अपने पाँवों के नीचे कुचलने के लिए जितनी हिम्मत चाहिए, उतनी उन में थी और यही तो एक ऐसी चीज थी कि जिस की वजह से हमको सेठीजी के जीवन से स्पर्द्धा होती है।

तो क्या सेठीजी में कोई कमी या बुराई नहीं थी? हाँ बेहद कमियाँ और बुराइयाँ थीं। अगर गुलाब के फूल की झाड़ी के काँटे गुलाब की बुराइयाँ हैं तो वैसी उनमें अनगिनत बुराइयाँ थीं। और गुलाब की फूल की झाड़ी के वह सूखे पत्ते जो पीले पड़ जाते हैं, कमियाँ हैं तो उनमें अनेकों कमियाँ थीं। अगर गुलाब की टेढ़ी-मेढ़ी बेढंगी, बदसूरत जड़ें गुलाब की कमियाँ हैं, गुलाब की बुराइयाँ हैं तो ये सब उनमें थीं। पर हम करें तो क्या करें, हमारी नजर तो गुलाब पर है और हम उस गुलाब पर इतने मस्त हैं कि उसे तोड़ते हुए हमारे सैकड़ों काँटे भी लग जायें तो अपनी मस्ती में उस ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। हम सेठीजी की उस लगन को देखें जिसको लेकर वह पहले धर्म के मैदान में कूदे, फिर समाज के मैदान में आये और फिर देश के मैदान में आये, या हम यह देखें कि वे क्या खाना खाते थे, किस तरह की टोपी लगाते थे या वे उस मकान में सोते थे जिसका पश्चिम की तरफ दरवाजा था, उस मकान में रहते थे जिसका पूरब की तरफ दरवाजा था, जो काँटों का ही रोना रोते हैं जो न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फूल पाना चाहते हैं और न फूल पाने की इच्छा रखते हैं। हम इसे मूर्खता ही समझते हैं कि फूल सूखकर जब उसकी पंखुडियाँ गिरें तब इस आधार पर फूल के बारेमें हम अपनी राय बनाएँ कि उसकी पंखुड़ियाँ जंगल में गिरी थीं, या किसी साधु की कुटी में गिरी थीं, या मंदिर में किसी देवता की वेदीपर गिरी थीं, या राजा के महल में गिरी थीं। आदमी के मरने के बाद उस लाश को चील, गृद्ध खाएँ तो वही बात, जलाई जाय तो वही बात, दफ़नाई जाय तो वही बात और बहाई जाय तो वही बात।

एक शोर है कि सेठीजी दफनाये गए और साथ में यह भी शोर है कि उनके दफ़नाये जानेकी जगह का ठीक पता नहीं है। अगर पिछली बात ठीक है तो बड़े काम की बात है क्योंकि इस तरह मरने के बाद नाम न छोड़कर दफ़नाये जाने से किसी दिन तो उन हड्डियों पर हल चलेगा और वहाँ खेती होगी और उससे जो दाने उगेंगे उसे जो खाएगा उसमें कुछ देश-भक्ति आये बगैर न रहेगी। सेठीजी को जो मौत मिली वैसी मौत के लिए दिल्ली के मशहूर कवि गालिब तक तरसते गये—

"रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
हमसुखन कोई न हो, और हमजुबाँ कोई न हो॥
बेदरोदीवार-सा इक घर बनाना चाहिये।
कोई हमसाया न हो और पासबाँ कोई न हो।
पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार।
और अगर मर जाइए तो नौहाख्वाँ कोई न हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

: ३ :

गुरु गोपालदास

पं. गोपालदासजी वरैयापर लेख लिखने से पहले हम यह कहना चाहेंगे कि हमने उन जैसा दूसरा आदमी समाज में आज तक नहीं देखा पर यह बात तो हर आदमी के लिए कही जा सकती है। नीम के पेड़ के लाखों पत्तों में कोई दो पत्ते एक से नहीं होते, पर सब हरे और नुकीले तो होते हैं। समाज के हर आदमी से यह आशा की जाती है कि वह कम से कम अपने समाज के मेम्बरों को सताये नहीं, उनसे झूठा व्यवहार न करे, उनके साथ ऐसे काम न करे जिनकी गिनती चोरी में होती है। समाज में रहकर अपनी लंगोटी और अपने आँख के बाँकपनपर पूरी निगाह रखे और अपनी ममता की हद बाँधकर रहे। इन पाँच बातों में, जिन्हें अणुव्रत यानी छोटे व्रत के नाम से पुकारा है, वे पूरे पूरे पक्के थे, और पाँचों अणुव्रतों को ठीक-ठीक निभानेवाला समाज में हमारे देखने में कोई दूसरा आदमी नहीं मिला। वह पूरे गृहस्थ थे, दूकानदारी भी करते थे, और पंडित और विद्वान् होने के नाते जगह-जगह व्याख्यान देने भी जाते थे और इस नाते आने-जाने का किराया और खर्च भी लेते थे, पर दूकानदारी और इन सब बातों में जितनी सचाई वह बरतते थे, और किसी दूसरे को बरतते हुए नहीं देखा है। अगर उन्हें कोई ५० रु० पेशगी भेज दे और घर पहुँचते-पहुँचते उनके पास १० रु० बचे तो वह १० रु० वापिस कर देते थे और दो पैसे बच रहें तो दो पैसे भी वापिस कर देते थे। वह हर तरह से हिसाब के मामले में पैसे-पैसे का ठीक-ठीक हिसाब रखते थे। पाँचों व्रतोंमें से हर व्रत का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे और इन व्रतों के प्रति सचाई ही उनमें एक ऐसा जादू बनी हुई थी, जिस से सभी उनकी तरफ़ खिंचते थे।

धर्म के मामले में आम तौर से लोग अणुव्रतोंमें से किसी व्रत की परवाह नहीं करते और सचाई के अणुव्रतकी तो बिल्कुल ही परवाह नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते थे। एक पण्डितजी ही थे जो धर्म और व्यवहार में कहीं भी सचाई को हाथ से नहीं खोते थे। तभी तो वह उन पंडितों की नजर में गिर गए जो धर्म के ज्ञाता थे, पर उसपर अमल करने के अभ्यासी नहीं थे।

पण्डितजी अणुव्रती थे पर साथ ही साथ परीक्षा प्रधानता में पूरा विश्वास रखते थे, और जैसे-जैसे वह परीक्षा-प्रधानता को समझते जाते थे, वैसे-वैसे उसपर अमल करते जाते थे। दूसरे शब्दों में वह धीरे-धीरे परीक्षा-प्रधानी बनते जा रहे थे कि मौत उन्हें उठाकर ले गई। कोई मन-चला यह सवाल उठा सकता है कि क्या वह शुरू-शुरू में परीक्षाप्रधानी नहीं थे? हम उसे जवाब देंगे—हाँ, वह नहीं थे। वह शुरू-शुरू में अन्ध-श्रद्धानी थे, कोरे कट्टर दिगम्बरी थे। उनकी कट्टरता दिनोंदिन कम होती जा रही थी और अगर वह जीते रहते तो वह कट्टरता खतम हो जाती और फिर वह दिगम्बरी न रहकर जैन बन जाते और अगर कुछ और उमर पाते तो सर्व धर्म-समभावी होकर इस दुनिया से कूच करते।

हम ऊपर के पैरे में बहुत बड़ी बात कह गये हैं, पर वह छोटे मुँह बड़ी बात नहीं है। हमने पं०जीको बहुत पास से देखा है। पं०जी हमको बहुत प्यार करते थे और जब भी हम उनसे मिले, उन्होंने पूरी एक रात हमसे बिल्कुल जी खोलकर बातें कीं और हमारी बातें खुले दिल से सुनीं। हम से जब वह बात करते थे तो एकदम अभिन्न हो जाते थे। हम यह सब कहकर भी यह नहीं कहना चाहते कि उन्होंने हमसे कबूला कि वह कट्टर दिगम्बरी थे। इस तरह बेतुकी बात हम क्यों पूछने लगे और वह हमसे क्यों कहने लगे? हम तो ऊपर की बात सिर्फ इसलिए लिख रहे हैं कि हमने उन्हें पाससे देखा है और उनका खुला हुआ दिल देखा है। बस उस नाते और सिर्फ उस नाते हम यह कहना चाहते हैं कि हम जो कुछ ऊपर कह आये हैं, वह वह है कि जो हमने नतीजा निकाला है।

हमने यह नतीजा कैसे निकाला यह बताने से पहले हम यह कह देना चाहते हैं कि जो आदमी परीक्षा प्रधानी बनने जा रहा है, वह किसी धर्म या पन्थ का कितना ही कट्टर अनुयायी क्यों न हो, उस आदमी से लाख दरजे अच्छा है जो अन्धश्रद्धानी होते हुए सर्व धर्म समभावी होने का दावा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है। वह तो सर्वधर्म समभाव का नाटक खेलता है या ढोंग रचता है। पं० जी ने कभी किसी चीज़ का नाटक नहीं खेला, वह जब जो कुछ थे, सच्चे जी से थे और सचाई ही तो पूज्य है, वही तो धर्म है, वही तो अंधेरे से उजाले की तरफ़ ले जाने वाली चीज़ है और वह पंडितजी में थी। इस सचाई के बलपर ही वह झट ताड़ जाते थे कि मैं अबतक कौन-सा नाटक खेलता रहा हूँ। और कौन-सा ढोंग रचता रहा हूँ। अपनी परीक्षा में जैसे ही उन्होंने नाटक को नाटक और ढोंग को ढोंग समझा कि उसे छोड़ा। जैसे ही उन्होंने परीक्षा से यह जाना कि सोमदेवकृत त्रि–'वर्णाचार' आर्ष ग्रन्थ नहीं है, वैसे ही उन्होंने उनको अलग किया और उसके आधार पर जो पूजा की क्रियाएँ करते थे, उन्हें धता बताई। धता बताई शब्द ज़रा भी हम बढ़कर नहीं कह रहे हैं, उन्होंने इससे ज्यादा कड़ा शब्द इस्तेमाल किया था।

धर्म के मामले में उनकी कही हुई खरी-खरी बातें आज बच्चे-बच्चे की ज़बान पर हैं, उन्हें हम दुहराना नहीं चाहते। हम तो यहाँ सिर्फ़ इतना ही कहेंगे कि पं० गोपालदासजी बरैया सचाई के साथ विचारस्वाधीनता का दरवाज़ा खोल गये और आज जो स्वामी सत्यभक्त के रूप में पं० दरबारीलालजी स्वाधीन विचारों का चमत्कार दिखा रहे हैं, वह उसी द्वारसे होकर आये हैं, जिसका दरवाजा पं० जी हिम्मत करके खोल गये थे।

पं० जीने सम्यक्त्व, देवता, कल्पवृक्ष, केवलज्ञान, मुक्ति इनके बारे में ऐसी-ऐसी बातें कहीं, जिनसे एक मर्तबा समाज में खलबली मची, पर वैसा तो होना ही था। कुछ दिनों पं० जीकी हँसी उड़ाई गई, फिर जोर का विरोध किया गया, फिर सहन किया गया और फिर मान लिया गया।

पं० जीने क्या-क्या काम किये इनको गिनाकर हम क्या करें, यह काम मुरेना महाविद्यालय का है और अगर हम भूलते नहीं हैं तो शायद वहाँ से उनकी जीवनी निकल चुकी है, जो ज्यादा जानना चाहें वे वहाँ से जान लें। हम तो सिर्फ़ वे ही बातें लिखना चाहते हैं, जिनका हमारे दिल पर असर है। पं० जीको जो संगिनी मिली थीं वह उन्हींके योग्य थीं। उनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संगिनी उनके अणुव्रतों की परीक्षा की कसौटी थीं, पर पं० जी उस कसौटी पर हमेशा सौटंच सोना ही साबित हुए। उनकी संगिनी के स्वभाव के बारे में हमने सुना ही सुना है, पर वह सुना ऐसा नहीं है कि जिसपर विश्वास न किया जाय। हमारा देखा हुआ कुछ भी नहीं है, कोई यह न समझे कि हम ऐसी बात कह कर पूर्वापर विरोध कर रहे हैं। चूंकि अभी तो हम कह आये हैं कि हमने पं० जी को पाससे देखा है और जब पास से देखा है तो क्या संगिनी को नहीं देखा था; हाँ देखा था पर हमने कभी उनको ऐसे रूप में नहीं देखा जैसा सुन रक्खा था, और इसके लिए तो हम एक घटना लिखे ही देते हैं।

इटावा में 'तत्त्व प्रकाशिनी' सभा का जलसा था। पं० जी अपनी संगिनी समेत वहाँ आये हुए थे। उनकी संगिनी उस वक्त प्रेमीजी के लड़के को जो उस वक्त वर्ष या डेढ़ वर्ष का होगा, गोद में खिला रही थीं। वह लड़का उनकी गोद में बुरी तरह रो रहा था, हम उस वक्त तक उन को पं. जीकी संगिनी की हैसियत से नहीं जानते थे। इसलिए हमने उनकी गोद से उस लड़के को छीन लिया। और सचमुच छीन लिया, ले लिया नहीं। छीन लिया हम यों कह रहे हैं कि हमने उस बच्चे को लेते वक्त कहा तो कुछ नहीं, पर लेने के तरीके से यह बताया कि हम यह कह रहे हैं कि तुम्हें बच्चा खिलाना नहीं आता और होनहार की बात कि वह बच्चा हमारी गोद में आकर चुप हो गया। यह सब कुछ प्रेमीजी खड़े-खड़े देख रहे थे। वह थोड़ी देर में चुपके-से हमारे पास आकर बोले कि आप बड़े भाग्यशाली हैं। मैंने पूछा—क्यों? बोले आपने पंडितानी जीसे बच्चा छीन लिया और आपको एक शब्द भी सुनने को नहीं मिला। हम तो उस वक्त न जाने क्या-क्या अंदाजा लगा रहे थे।

उस दिन के बाद हम जब भी पं० जीसे मिले, हमने तो उनको इसी स्वभाव में पाया। यही वजह है कि हम उनके स्वभाव के बारे में जो कुछ कह रहे हैं वह सब सुनी सुनाई बात है।

कुछ भी सही, हाँ तो उनकी संगिनी उनके अणुव्रत की कसौटी थीं और उन्होंने जीवनभर उनका साथ ऐसा निभाया कि जो एक अणुव्रती ही निभा सकता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं० जीने जीते जी दूसरी प्रतिमा से आगे बढ़ने की कोशिश नहीं की, लेकिन एक से ज्यादा ब्रम्हचारियों को हमने उनके पाँव छूते देखा, वह सचमुच इस योग्य थे।

आज जो तत्त्व-चर्चा घर-घर में फैली हुई है और ऐसी बन गई है मानो वह माँके पेट से ही साथ साथ आती हो, यह सब पं० जी की मेहनत का ही फल है। वह गहरी-से-गहरी चर्चा को इतनी आसान बना देते थे कि एक बार तो तत्त्वों का बिल्कुल अजानकार भी ठीक-ठीक समझ जाता था। यह दूसरी बात है कि अपनी अजानकारी के कारण वह उसे ज्यादा देर के लिए याद न रख सके। इसलिए उन्होंने "जैन सिद्धान्त प्रवेशिका" नाम की एक किताब लिख डाली थी, उसे आप जैन सिद्धान्त का जेबीकोश यानी पाकेट डिक्शनरी कह सकते हैं।

पं० जी की जीवनी की बातें तो अनेकों हैं, उन्हें लिखकर हम क्या करें, हम तो यह लिखकर अपना कहना खत्म कत्म करते हैं कि उनकी जीवनी ऐसी थी, जिससे कुछ सीख ली जा सकती है और उसका निचोड़ हम यह समझें :—

१. सच्चे या अणुव्रती बनना है तो निर्भीक बनो।

२. निर्भीक बनना है तो किसी की नौकरी मत करो, अपना कोई रोजगार करो।

३. रोजगार करते हुए अगर धर्म या धर्म चर्चा के वक्ता बनना चाहते हो तो अणुव्रत का ठीक-ठीक पालन करो, तभी दुकान चल सकेगी।

४. अणुव्रत को अगर ठीक-ठीक पालन करना है तो अपनी हद बाँधो।

५. अपनी हद बाँधनी है तो किसी कर्तव्य से बँधो।

६. कर्त्तव्य को ही अधिकार मानो।

७. अधिकारी बनो, अधिकार के लिए मत रोओ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

: ४ :

बाल जैनेन्द्र

जैनेन्द्रकुमार के बालकपन पर कुछ लिखना बिल्कुल अधूरा रह जायेगा, अगर उनके माँ-बाप को बिल्कुल प्रकाश में न लाया जाय। मेरा तो यह ख्याल है कि उनको जितना प्रकाश में लाया जायगा, उतना ही जैनेन्द्रकुमार को समझने में आसानी होगी। पर यहाँ तो हम उनका उतना ही परिचय देंगे जिसकी यहां जरूरत है।

जैनेन्द्रकुमार की माता का जन्म खाते-पीते घराने में हुआ था। और अगर उन दिनों लड़कियों की तालीम या ऊंची तालीम बुरी नजर से न देखी जाती होती, तो वे उस योग्य जरूर थीं कि बड़ी आसानी से ऊंची से ऊंची डिग्री पा सकती थीं। क्योंकि घर में साधनों की कमी न थी। यह ठीक है कि उन दिनों लड़कियों को विद्या नहीं दी जाती थी, और अपढ़ भी रखा जाता था। पर उन्हें मूर्ख या अज्ञान कभी नहीं रखा जाता था। घर के काम से वे खूब वाकिफ होती थीं। और अदब-शासन कला बुरी चीज नहीं है, तो यह उन्हें काफी से ज्यादा सिखा दी जाती थी। बारह वर्ष की लड़की भी बेवा होकर अगर उसे मौका दिया जाय तो बड़ी दूकान संभाल सकती थी, जमींदारी संभाल सकती थी, और अगर वे गरीब घराने में पैदा हुई हों तो अपने खाने-पहनने का इन्तजाम कर सकती थीं। यही वजह थी कि जैनेन्द्र कुमार की माँ को जब जैसा अवसर मिला, उन्होंने उस अवसर पर अपने आपको उसके काबिल साबित कर दिखाया। यों जैनेन्द्रकुमार एक बड़ी योग्य माता की देन हैं।

जैनेन्द्रकुमार के पिता अपने हाथ-पांव पर भरोसा करने वाले घराने में पैदा हुए थे। उस घराने के लिहाज से जितनी तालीम मिल सकती थी, उतनी तालीम उन्होंने जरूर पाई। पटवारी का इम्तहान पास थे। पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हाथ-पांव पर भरोसा करने वाले होने की वजह से पटवारी का काम कभी किया नहीं। हां, कुछ दिनों स्टाम्प्स-फरोसी जरूरी की। पर वह नौकरी नहीं थी। उससे घर का मामूली काम चलता था। पर ज्यादह काम तो उसी से चलता था जो वह अपने हाथ-पांव की मेहनत से कमाते थे। वह अपनी क्लास में हिसाब में सबसे अव्वल थे। कहानी कहते थे तो सीन खड़ा कर देते थे। उनकी कहानी सुनने में ऐसी अच्छी लगती थी जैसी मुंशी अजमेरी की। दोनों की कहानियां हमने सुनी हैं। जैनेन्द्रकुमार के पिता को अगर अवसर मिलता तो वह अच्छे साहित्यकार सिद्ध हो सकते थे, और अच्छे इन्जीनियर भी।

यह थे जैनेन्द्रकुमार के पिता। और उनकी इस देन से जो भी आज तक हमने पाया, वह इतना नहीं है कि हमें कुछ अचरज हो।

जैनेन्द्रकुमार का जन्म सन् १९०४ की सकट चौथ को हुआ। अभी नाम रखने का दिन भी न आया था कि बाल-जैनेन्द्र के माता निकल आई। इतना ही अच्छा हुआ कि वह बहुत जोर की न थी। पर वह दृश्य हमारी आँखों के सामने है जब बाल-जैनेन्द्र अपनी कोहनी खाट पर टेक कर, बड़ी कोशिश से हाथ उठाकर और सिर्फ कलाई पर हाथ मोड़कर अपने चेहरे पर की मक्खी उड़ाता था। हो सकता है उस काम में उसके लिये बहुत बड़ी कोशिश रही हो, पर हमारे लिये तो वह तमाशा ही था। उन दिनों हम १९ वर्ष के थे पर किसी वजह से सोहर जाने से न रुक सकते थे। इसलिये हम और जैनेन्द्रकुमार की माँ दोनों ही घंटों बाल-जैनेन्द्र के यह खेल देखा करते थे। हम चाहते तो मक्खी उड़ा सकते थे, और कभी कभी उड़ा भी देते थे। पर मुँह पर पड़ी मक्खी को तो उड़ाता देखने में ही मजा आता था। बाल-जैनेन्द्र की उस समय की हरकतों को देखकर हम न जाने अपने मन में क्या क्या सोचा करते थे। खैर, छठे दिन नाम रखने का वक्त आया और पंडित ने यह भविष्यवाणी की कि बाल-जैनेन्द्र अपने बाप लिये बहुत भारी साबित होगा। उसका यह कहना था कि बाल जैनेन्द्र अपने बाप की निगाहों से उतर गये। और सन् १९०७ में जब वह बीमार पड़े और बाल-जैनेन्द्र को उनकी गोद में दिया गया तो वह उसको थोड़ी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देर ही ले पाये थे कि उनको कुछ तकलीफ शुरू हुई और उन्होंने तुरंत ही बाल-जैनेन्द्र को यह कहकर कि यह मुझे खाकर ही रहेगा उनकी माँ के सुपुर्द कर दिया। और उसके कुछ महीनों के बाद वह सचमुच ही चल बसे।

जैनेन्द्रकुमार इस तरह बाप के गुण ही बिरासत में पा सके, और कुछ तो क्या उनका प्यार भी उन्हें न मिला। पर जिस के भाग्य में प्यार बदा है, वह उसको क्यों न पाये? बाप का प्यार न मिला तो मामा के इतने प्यारे बन गये कि १५ वर्ष की उमर तक वह यही न समझ पाये कि मामा उनके मामा हैं, या उनके बाप।

सन् १९०७ में ही जैनेन्द्रकुमार अपनी माँ समेत अपने मामा के घर पहुंच गये। और वहां इतने एकमेक हो गये कि रिश्तेदारों को छोड़कर कोई कभी यह जान ही न पाया कि उनके बाप जीवित नहीं हैं।

जैनेन्द्रकुमार की दो बहनें हैं, दोनों ही बड़ी हैं। उनमें से एक तो इतनी बड़ी है, कि वह जैनेन्द्रकुमार को इतना प्यार करती है जितना प्यार शायद उनको माँ से भी न मिला होगा। जब जैनेन्द्रकुमार छोटे थे, तब उनकी बड़ी बहन उनके लिये अपने खिलौने और अपनी खाने-पीने की चीजें ऐसे ही सेंत कर रखती थी, जैसे माँ बेटे के लिये। इन बहन की शादी बड़ी होते हुये भी इसलिये न हो पाई थी कि वह हमेशा अपनी नानी के पास रहीं। और उनकी नानी बहुत छोटी उम्र की शादी के खिलाफ थीं हाँ, छोटी बहन की शादी उन्हीं दिनों हुई थी जब जैनेन्द्रकुमार सोहर में थे।

जैनेन्द्रकुमार पर बाहरी असर जितना माँ और मामा का है, उतना ही असर उनकी बड़ी बहन का भी है। उनकी बड़ी बहन आज जीवित हैं, और ५० से ऊपर होते हुए भी बालकों जैसा स्वभाव रखती हैं। हो सकता है जैनेन्द्रकुमार ने अपनी बड़ी बहन से बहुत कुछ लिया।

हमारा यह ख्याल है कि जो आदमी बचपन में जितना भोला होता है, उतना ही बड़ेपन में उसे होशियार होना चाहिये। असल में भोलापन माने—सच और झूठ में भेद न करना, सभी को सच समझना और हर सीख को लेने के लिये तैयार रहना। ऐसे भोले बालकों के साथ कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदमी धोखेबाजी कर के उन को बेहद बुरा बना सकता है। और अगर वही बालक किसी भले आदमी के पाले पड़ जाये तो बहुत भला बन सकता है। अब जैनेन्द्रकुमार के बचपन के भोलेपन का कुछ हाल सुनिये।

एक बार बाल-जैनेन्द्र को जोर का पेशाब लगा। माँ और मामी दोनों ही घरेलू काम में इतनी लगी हुई थीं कि एक-दो बार तो इनकी बात पर ध्यान ही नहीं दिया गया कि यह क्या कह रहे हैं, और जब ध्यान दिया तो व्यंग और गुस्से से भरा हुआ। बाल जैनेन्द्र ने पूछा :

अम्मा मुत्ती कहां करूं ?

कर ले चूल्हे में।

बाल-जैनेन्द्र को व्यंग और गुस्से से क्या लेना। वह सीधे चूल्हे पर पहुँचे और बड़े आराम के साथ पेशाब कर आये। मामी ने देखा तो हंस पड़ी और उन्हें पकड़ कर अपनी जीजी यानी उनकी माँ के पास ले गई। वह भी यह सब सुन कर हंस दी। इन्हें गले लगाया और कुछ समझा दिया। मामला यहीं तक न रहा। जब उनके मामा घर आये तो उनकी माँ ने शिकायत की शक्ल में उन से यह कहा कि देखो इस ने आज चूल्हे में पेशाब कर दिया। उन्हों ने ज्यादह पूछताछ तो की नहीं उनके एक चपत जड़ दिया। यह थोड़े से रोये, उसके बाद फिर चूल्हे में पेशाब करने की बात उन्हें कभी न जंची और कभी माँ या मामी के धोखे में न आये।

मामा को यह बहुत प्यारे थे। मामा ने प्यार में इन का नाम बंदर रख छोड़ा था। और बन्दर नाम रखने की वजह यह थी कि 'बन्दर के नाम से पुकारे जाने पर यह जो ऊँ ऊँ की आवाज निकालते थे वह बिलकुल बन्दर से मिलती-जुलती होती थी। मामा की बन्दर की आवाज पर यह इतने लागू थे कि सोते हुये भी जाग पड़ते थे। और इसकी वजह यह भी थी कि जब भी इन्हें आवाज लगती थी तो इन्हें या तो कुछ खाने खेलने की चीज मिलती थी और ऐसा न हुआ तो गोदी में कुछ दूर टहलने का मौका तो मिलता ही था। मामा भी इन को अजब ढंग के मिले थे जो रात को दो बजे भी इन्हें जगाकर गोदी में टहलाने ले जाते थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस सब प्यार का एक नतीजा और हुआ। एक मरतवा इनकी माँ की रजाई पर कोयले की एक चिन्गारी गिर पड़ी थी, और उस में इतना सुराख हो गया था जिस में बाल-जैनेन्द्र की अंगुली जा सकती थी। बस अब इन का यह हाल था कि जैसे ही बन्दर आवाज़ सुनी और इन्होंने अपनी अंगुली रजाई के उस सुराख में इसलिये डाली कि उसे बड़ा करके मामा को देखूं। पर उस से तो उलटा सुराख बंद हो जाता था, और फिर यह जोर लगाते थे। और इस तरह सुराख यहाँ तक वड़ा कर लिया गया कि यह बन्दर की आवाज सुनकर फौरन ही जाग जाते थे। और कोशिश करके बड़ी तेजी से अपना सिर उस में होकर निकाल लेते थे। और तब ऊं ऊं कहते थे क्योंकि यह मनबहलाव का खेल बन गया था इसलिये रजाई के उस सुराख की मरम्मत नहीं की जाती थी।

कुछ दिनों वाद जैनेन्द्रकुमार अपनी सूझबूझ से काम लेने लगे। मामा के साथ रहने के यह बड़े शौकीन थे, इसलिये जब मामा खाने बैठते थे, तो यह उनके जूतों पर जा बैठते थे, वह इस दूरनदेशी से कि मामा जब बाहर जायेंगे तो जूते पहनेंगे ही और बस फिर हम उनके साथ हो लेंगे। पर जब मामा को यह पता चला तो उन्हें एक दिन इन्हें धोखा देने की सूझी। और वह जूता पहने बगैर दूसरे रास्ते से चल दीये। जब काफी से ज्यादा देर हो गई तब बाल-जैनेन्द्र तलाश करते हुए अन्दर आये और लगे अपनी माँ से पूछने कि मामा कहां हैं? बस यह जवाब सुनकर कि मामा तो बड़ी देर से चले गये, माँ और मामी पर पिल पड़े, कि उन्हें यह सब क्यों नहीं बताया गया। खैर उन्होंने तो माफी मांगकर समझा बुझाकर उनसे पीछा छुड़ाया। पर मामा से जो यह रूठे तो तभी मनें जब उन्होंने यह कह दिया कि अब वह वैसा नहीं करेंगे। और उन्होंने अपना बचन निभाया।

बाल-जैनेन्द्र ने कहीं किसी से सुन लिया या शायद सीधे किसी ने उनसे यह कह दिया कि रुपया बो देने से उग जाता है, उसका पेड़ खड़ा हो जाता है, और उसमें रुपये लगते हैं। बस अब क्या था, वड़ी बहन की गुल्लक खोल उसमें से एक रुपया निकाला और वाहर किसी पेड़ के नीचे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बो आये। उसे कुछ दिनों पानी भी देते रहे। होनहार की बात कि कुछ ही दिनों बाद उनके मामा वहां से चल दिये, और उस जगह को हमेशा के लिये छोड़ दिया। एक मरतबा इस रुपया बोने की घटना के पांच-छः महीने बाद, इनके मामा जब रेल से कहीं जा रहे थे तो यह उनके साथ थे। जब वह स्टेशन आया जहां इन्होंने रुपया बोया था तब अपने मामा से बोले, "मैं यहाँ उतरूंगा"।

मामा ने पूछा, "किस लिये" बोले, "मैंने यहां रुपया बो रखा है, अब वह उग आया होगा"।

मामा यह सुन कर हंस दिये। पर यह उनकी हंसी पर उन्हें इस तरह देख रहे थे, मानों कह रहे थे कि हमारे मामा इतना भी नहीं समझते!

एक दिन का जिक्र है किसी वजह से घर में एक बूंद दूध न था। बाल-जैनेन्द्र ने मां से दूध मांगा। उन्होंने कह दिया बेटा दूध तो नहीं है, मिठाई ले लो, मठरी लेलो, फल ले लो। पर बाल-जैनेन्द्र किसी पर राजी नहीं हुये, वह दूध के लिये ही हठ करते रहे। और जब मां ने फिर यही कहा कि बेटा दूध घर में नहीं है, कहां से लाऊं? तब आप बोले कि दूध टट्टी घर में बखेरने के लिये है और मेरे पीने के लिये नहीं। घर का घर यह सुनकर हंस पड़ा क्यों कि बाल-जैनेन्द्र टट्टी घर में बखेरे हुये फिनायल को ही दूध समझे हुये थे। उन्हें जितना ही यह समझाने की कोशिश की गई कि वह दूध नहीं है, उतना ही उनके गुस्से का पारा चढ़ता गया। आखिर में रूठ कर बाहर बरामदे में जा बैठे, और फिर पड़ौस से दूध आने पर ही माने।

घर में इन से छोटा बच्चा कोई न था। इसलिये इनको सब ही का प्यार मिलता था। यह प्यार से अघाये हुए थे, इसलिये प्यार उंडेलना चाहते थे। अब यह उंडेलें तो किस पर? पड़ोस में भी इनसे छोटा कोई बच्चा न था, पर इन्हें तो कोई चाहिये ही। एक दिन एक पिल्ला पकड़ लाये। बस फिर क्या था, उस पर इतना प्यार उंडेला गया कि वह किं-किं कर के इनसे अपना पीछा छुड़ाने की कोशिश करने लगा। पर यह कब छोड़ने लगे, कभी उसको कुछ खिलाना, कभी ग्लास से पानी पिलाना, कभी उसे उठाकर सुलाना, कभी गोदी लेना, और कभी उस के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंजों से तंग आकर उसे छोड़ देने पर, गिर जाने पर फिर उसे प्यार से उठाना और थपथपाना, चारपाई पर सुलाना। घंटे डेढ़ घंटे में ही वह पिल्ला इन के प्यार से ऊब गया और इन से पीछा छुड़ाकर भाग गया। यह उस के पीछे बहुत भागे पर वह हाथ न आया। घर के और लोगों को जरा भी उस पिल्ले से प्यार होता, तो हो सकता था कि वह फिर पकड़ लिया जाता। पर वैसा न हुआ, इसलिये इनका यह शौक एक दिन और वह भी एक घंटे से ज्यादा न चला।

हम बहुत सोचने पर भी यह नहीं बता सकते कि बाल-जैनेन्द्र को और बच्चों की तरह भूख का ज्ञान क्यों नहीं था। भूख तो बच्चों के साथ साथ जन्म लेती है। इन के साथ उसने जन्म लिया या नहीं, यह पता नहीं। कोई यह न समझे कि इन्हें भूख ही नहीं लगती थी और यह खाने के लिये कोई चीज ही नहीं मांगते थे या यह कि बहुत छुटपन में भूख से कभी रोये ही नहीं। नहीं नहीं, यह छुटपन में भूख से ऐसे ही रोते थे जैसे कि और बच्चे। पर जब यह छः बरस के थे तब स्कूल से ११ बजे जब यह बहुत भूखे लौटते थे तो यह खाना नहीं मांगते थे। मां से आते ही बस यह कहते थे कि माँ मेरे पेट में दर्द होता है। माँ इन्हें खूब पहचानती थी कि यह दर्द नहीं है भूख की पुकार है। और वह इन के दर्द का वही इलाज करती थी कि इनको खाना खिला देती थी और इनका दर्द ठीक हो जाता था। भूख से जो तकलीफ इनके पेट में होती थी उस तकलीफ का नाता यह भूख से जोड़ना पसन्द नहीं करते थे। उसका ज्यों का त्यों हाल अपनी माँ को बता देते थे। दूसरे शब्दों में भूख का नाम इन्होंने दर्द रख छोड़ा था, और दर्द का दूसरा नाम वेदना है। और दार्शनिकों की बोली में भूख प्रतिकूल वेदना के सिवाय और है ही क्या? यों अगर पढ़ने वाले चाहें तो बाल-जैनेन्द्र को बाल-दार्शनिक भी कह सकते हैं।

घराने के रिवाज के मुताबिक इनका विद्यारम्भ संस्कार, आ, ई से न होकर अलिफ, बे, ते, से हुआ। और होनहार की बात कि सात बरस की उम्र में ही यह एक ऐसे गुरुकुल में दाखिल हो गये, जहां क़ ख़ ग़ ज़ नागरी अक्षरों में शामिल समझे जाते थे। इनका शीन क़ाफ ऐसा ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुरुस्त है जैसा किसी फारसी-दांका। इनके मामा के घराने का भी शीन क़ाफ दुरुस्त था क्योंकि उस घर में औरतों को छोड़कर सभी फ़ारसी पढ़े थे। और अब तीस-पैंतीस बरस से दिल्ली में रहने की वजह से उस शीन क़ाफ को कोई नुकसान नहीं पहुँचा है, और यह उर्दू साहित्य में इसी वजह से काफी रस ले लेते हैं।

कहीं ऊपर यह कहा गया है कि यह १९ बरस तक अपने मामा को अपना पिता ही समझते रहे। इसकी एक वजह तो यह थी कि जब यह चार बरस के थे तब इनके घर में इन के एक ममेरे भाई का जन्म हुआ। वह जब बोलने के काबिल हुआ तो इनकी देखादेखी अपने बाप को मामा कहकर पुकारने लगा। इस बारे में घरमें से किसी ने ध्यान नहीं दिया और कोई रोकथाम भी न की गई। अब इनके लिये कोई मौका ही न रह गया कि यह मामा और बाप में कोई भेद कर सकें। और कभी कभी अपने ममेरे भाई को अपनी माँ का दूध पीते देखकर तो इन्हें यह शक ही न रह गया कि इनका ममेरा भाई इनका सगा भाई नहीं है। दूसरी वजह यह हुई कि सात बरस की उम्र में बाल-जैनेन्द्र जैसे ही गुरुकुल में दाखिल हुये तो चार बरस का ममेरा भाई भी इनके साथ था। यह दूसरी बात है कि दोनों एक क्लास में नहीं थे। बस एक दिन १५ बरस की उम्र में जब जैनेन्द्र ने गुरुकुल का प्रवेश रजिस्टर देखा और उसमें अपने बाप के नाम की जगह प्यारेलाल लिखा पाया और संरक्षक की जगह अपने मामा का नाम पाया, तब पता लगा कि मामा, मामा थे बाप नहीं थे।

कहीं ऊपर हम यह भी कह आये हैं कि बाल-जैनेन्द्र को अपना प्यार उंडेलने के लिये घर में कोई न दीखता था। इसलिये संग साथ में जब इनके ममेरे भाई का जन्म हुआ तो इनकी खुशी का ठिकाना नहीं था। अगर इनका बस चलता तो उसी वक्त उसे अपने पास ले आते और क्या अचरज कि उसे कुछ खिलाने में लग जाते। क्योंकि गुरुकुल में यह अक्सर दूर से अपने ममेरे भाई को ताका करते थे और जब वह इनकी तरफ देखता था तो दोनों मुस्करा देते थे और फिर यह मुस्कराहट हंसी में तबदील हो जाती थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होनहार की बात कि गुरुकुल में भी इनसे छोटा सिर्फ इनका ममेरा भाई ही था, बाकी सब बड़े थे। गुरुकुल की स्थापना सन् ११ में हुई थी और उसके शुरू के पाँच ब्रह्मचारियों में से यह भी एक थे।

जैनेन्द्र का गुरुकुल-जीवन

"जैनेन्द्र" यह गुरुकुल का दिया हुआ नाम है। सन् ११ को वैसाख सुदी तीज से पहले जैनेन्द्र का नाम आनन्दीलाल था।

गुरुकुल में सन् ११ के खत्म होते होते ४० ब्रह्मचारी हो गये थे। उन ४० में सिर्फ एक ही विद्यार्थी था जो इतना ही कुशाग्र-बुद्धि था जितना जैनेन्द्र, और उसका नाम था रामेन्द्र। गुरुकुल के अधिष्ठाता लीक-लीक चलने वाले आदमी नहीं थे। वह मौके-मौके पर वही करते थे जो उनको ठीक सूझता था। गुरुकुल का आम नियम यह था कि सुबह चार बजे उठना और रात को नौ बजे सो जाना। पर जैनेन्द्र और रामेन्द्र इन दोनों ही के लिये यह काम मुश्किल ही नहीं, असंभव थे। इनको नौ बजे तक जगाना इतना ही बुरा काम था जितना किसी को रस्सी बांधकर खड़ा रखना और चार बजे उठाना उतना ही मुश्किल काम था जितना खाली बोरे को खड़े रखने की कोशिश करना। इन्हें देर से उठने और जल्दी सो जाने के ऐबों (अगर यह ऐब हैं) के साथ साथ इन दोनों में पढ़ने लिखने के अनेक गुण थे, इसलिये यह दोनों चार बजे उठने और नौ बजे सोने के अपवाद बनाये गये। और इस अपवाद की वजह से इनके साथी ब्रह्मचारी इन से कोई डाह नहीं करते थे। इनका आदर करते थे, और इनको ठेकेदार के नाम से पुकारते थे। ठेकेदार यों कि यह अपना पाठ शाम को जब सुना दें तभी से यह सोने के लिये आजाद थे। उठने के लिये यों आजाद थे कि गुरुकुल की खास क्रियाओं में यह ठीक वक्त पर शामिल हो जाते थे। गुरुकुल की पढ़ाई-लिखाई में जैनेन्द्रकुमार को सिर्फ होशियार ही नहीं कहा जा सकता, काफी से ज्यादा होशियार कहना पड़ेगा। क्योंकि उम्र के लिहाज से तीसरी क्लास में सब से अव्वल आने पर भी सिर्फ इस वास्ते यह चौथी क्लास में नहीं चढ़ाये गये थे कि चौथी क्लास की पढ़ाई का बोझ उस उम्र के बालक के लिये, गुरुकुल के मुख्य अधिष्ठाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की नजर में काफी से ज्यादा था। हम याद है कि यह सुनकर जैनेन्द्रको काफी तकलीफ हुई थी, पर मर्जी के माफिक घूमने-फिरने के आनन्द में वह तकलीफ जल्दी ही भुलाई जा सकी थी।

एक बार मुख्य अधिष्ठाता का एक हल्का-सा चपत खाकर यह बुरी तरह बिगड़े थे, और वह इस वजह से कि जिस बात के लिये इन्हें सजा मिली थी उस में उनका कोई कसूर नहीं था। इन्होंने अपनी सफाई देकर यह पूरी अच्छी तरह साबित कर दिया कि उनको जो चपत लगा है वह एक बेकसूर को लगा है। मुख्य अधिष्ठाता एक समझदार आदमी थे, उन्होंने इन से माफी मांगी। जिस के जवाब में यह बोले, "आप के माफी मांगने से जो चपत मेरे लग गया है वह बेलगा हुआ तो नहीं हो सकता?"

इसपर अधिष्ठाता जी बोले, "तो फिर भाई चपत की जगह चपत मारलो।"

इस के जवाब में इन्होंने कहा कि ऐसा करना तो और भी बुरा होगा, और ऐसा करने से भी मुझको लगा हुआ चपत बेलगा हुआ कैसे हो सकता है। आखिर फैसला इस बात पर हुआ कि अधिष्ठाता जी आइन्दा इस बात का बहुत ख्याल रखेंगे कि बेकसूर किसी को छोटी से छोटी सजा भी न दी जाय। जब का यह जिक्र है उस वक्त जैनेन्द्रकुमार का नवां बरस चल रहा था।

यह हम कह ही चुके हैं कि जैनेन्द्रकुमार पढ़ाई-लिखाई में सब से आगे थे। छः महीने पढ़ने-लिखने से छुट्टी पाकर, और अपना समय खेल-कूद में बिताकर भी किसी से पीछे नहीं रहे। यह सब तो था पर बोलने और लिखने में यह अपनी क्लास में आखिरी सिरे पर थे। यह ठीक है कि यह अपनी क्लास में सब से छोटे थे, पर इससे क्या। क्लास में जब सब से अव्वल थे तो बोलने और लिखने में भी अव्वल होना चाहिये था। इनकी क्लास में यह नौ बरस के थे और बाकी सब बारह और तेरह के बीच के थे। थोड़ा थोड़ा तो सभी बोल लेते थे, पर उनमें से तीन-चार तो ऐसे थे जो अचानक दिये हुये विषय पर पन्द्रह-बीस मिनट तक बोल सकते थे। उनमें से एक ब्रह्मचारी ने तो एक मशहूर उपदेशक के व्याख्यान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का खंडन पांच मिनट की तैयारी के बल पर सभा के मंच से किया था। पर इन सब बातों का कभी कोई असर जैनेन्द्रकुमार पर नहीं हुआ। वह गुरुकुल की सभा में कभी एक मिनट बोल कर नहीं दिये और न कभी गुरुकुल के हाथ लिखे मैगजीन में अपने नाम से एक लाइन दी। अध्यापकों और लोगों ने कभी कभी मजबूर भी किया पर मुख्य अधिष्ठाता ने उनपर कभी कोई जोर नहीं डाला।

और ब्रह्मचारियों के लिहाज से इनकी खुराक काफी कम थी। इतनी कम थी कि चिन्ता का विषय बन गई थी। पर गुरुकुल के डाक्टर ने यह समझदारी ही की कि इनको बीमार नहीं समझा। और उसकी एक वजह यह भी थी कि इस कम खुरी में भी इनका एक साथी था, और वह इनसे भी कहीं आगे था। वह तो दिन भर में पतली पतली चार रोटियों से ज्यादा नहीं खाता था, दूध भी बहुत ही कम पीता था। पर उसकी कम खुरी की वजह यह थी कि वह तीन-तीन चार-चार रोज टट्टी नहीं जाता था। पर जैनेन्द्र के साथ तो यह बात नहीं थी। यह ठीक है कि गुरुकुल का खाना काफी भारी होता था, पर वह तो सभी के लिये था। उसकी उम्र के और बाद आये छोटे ब्रह्मचारी भी जैनेन्द्र से सवाया और ड्योढ़ा खा सकते थे। बस कम खाने की बात को सिर्फ इसलिये चिन्ता की बात नहीं समझा गया कि खेलकूद में जैनेन्द्र पूरा हिस्सा लेते थे और सब में अव्वल नहीं थे तो सब से पीछे भी नहीं थे।

गुरुकुल में शतरंज खेलना मना न था। मना कैसा, एक तरीके से खिलाया जाता था। और उसे किसी हद तक जरूरी समझा जाता था। हां, उसके दिन और वक्त नियत थे। शतरंज के खेल में जैनेन्द्र कई अध्यापकों से भी अच्छा खेल लेते थे।

किसी वजह से जैनेन्द्रकुमार को अपनी तालीम पूरी किये बिना गुरुकुल छोड़ना पड़ा और सन् १८ में मास्टर बलवंतसिंहजी के पास बिजनौर में रहकर पंजाब मैट्रिक की तैयारी की। और जिस साल गांधीजी के पकड़े जाने की वजह से दिल्ली में गोली चली, उसी साल पंजाब मैट्रिक का इम्तहान दिया_और इत्तफाक से दिल्ली टाउन हाल पर जिस वक्त गोली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चली थी उस वक्त चौदह बरस के जैनेन्द्रकुमार वहीं मौजूद थे और उस गोली-कांड को ऐसे देखते रहे मानों उसके लिये वह एक मामूली खेल था।

मैट्रिक करने के बाद वह बनारस यूनिवर्सिटी में दाखिल हो गये और सन् २० में जब असहयोग आन्दोलन जोरों के साथ शुरू हुआ तब इन्होंने अपने मामा को एक पत्र लिखा कि वह कालेज छोड़कर आन्दोलन में हिस्सा लेना चाहते हैं। जिसके जवाब में उनके मामा ने लिखा कि होना तो यह चाहिये था कि तुम मुझे खबर देते कि तुमने कालेज छोड़ दिया है, न कि यह कि तुम मुझ से कालेज छोड़ने की इजाजत चाह रहे हो। इस खत को पाकर इन्होंने वही किया जो करने के लिये वह खत उन्हें झिड़क रहा था। जैनेन्द्रकुमार का इस वक्त सोलहवां वर्ष चल रहा था।

जैनेन्द्रकुमार का इससे आगे का जीवन बालकपन की हद से परे चला जाता है, इसलिये इसको हम यहीं खत्म करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

: ५ :

रामदेवी बाई

रामदेवी बाई, जिन्होंने जैनेन्द्रकुमार को जन्म दिया, समाज के लिये ऐसी बाई नहीं जिनका परिचय जैनेन्द्र की माता कह कर दिया जाय। समाज में उनका अपना स्थान था। उनको इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त थी कि आज उनके स्वर्गवास होने के सोलह वर्ष बाद भी उन पर कुछ लिखने के लिये, मेरी राय में किसी लंबी-चौड़ी भूमिका की जरूरत नहीं। उनका जीवन इतना बोलता जीवन है कि पाठक अगर यह बात भी न जानें कि रामदेवी बाई कौन थीं, कहां की थीं, किसकी पुत्री और किसकी माता थीं, किसकी पत्नी और किसकी बहन थीं, तब भी उनकी जीवन घटना से लाभ उठा सकते हैं।

रामदेवी बाई का जन्म सन् १८७७ में अलीगढ़ जिले की तहसील अतरौली नगर में हुआ। जन्म के समय रामदेवी के पिता राजघाट के निकट गंगा से निकली नहर के नरोरा डिवीजन के इन्जिनियर थे। पहली सन्तान होने के कारण यह अपने मां-बाप दोनों को प्यारी थी। उनकी मां से हमने जब यह घटना सुनी कि जब यह छः-सात महीने की थी तब इनके पिता ने इनको नहर में फेंक दिया था, तब हम घबराये और पूछ बैठे, यह क्यों? जवाब मिला, उनके पिता अच्छे तैराक थे और अपनी तैराकी के बलबूते उन्होंनें ऐसा किया था। फिर कूद कर चट निकाल भी तो लाये थे। उनके पिता ने ऐसा क्यों किया? इसका कारण हमें यह बताया गया कि बच्चे का पानी से डर निकालने के लिये। पानी से डर निकला या नहीं यह हम नहीं जानते, इतना जरूर जानते हैं कि उनका हृदय अपने पिता के लिये इतना मोह से भरा था कि वे जब अपने पिता के स्वर्गवास की खबर सुनकर अपनी ससुराल से आईं तब इतना दुख माना कि उनकी जान के लाले पड़ गये। एक बार यह समझ लिया गया कि उनकी जान निकल गई और कफ़न लेने के लिये आदमी भेज दिया गया। पर, कफन आते आते उनके प्राण लौट आये। इस झूठी बात के बल पर कुछ देर के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिये उनके प्राण को रोके रखने की कोशिश की गई कि उनके पिता का देहान्त नहीं हुआ, वे अन्दर सोये हैं, और अगर वह रोयेंगी-पीटेंगी तो उनकी नींद खराब हो जाने का डर है। इस झूठ बात ने सचमुच जादू का काम किया। पन्द्रह-बीस मिनट बाद वह इस काबिल हो गई कि वह अपने पिता के स्वर्गवास हो जाने के दुख को सह सकें। उनके हृदय की बनावट कुछ इस किस्म की थी कि उनको अपने भाई, अपनी मां, और अपने पिता से बेहद गहरा लगाव था। तभी तो पिता के स्वर्गवास होने के पहले एक बार और अपने सोलह बरस के भाई के स्वर्गवास के समय उनका वही हाल हो गया था जो पिता के स्वर्गवास के समय हुआ।

उस समय, जब रामदेवी बाई छोटी थी, लड़कियों को ज्यादा पढ़ाने लिखाने का रिवाज न उस कुल में था, न उस जाति में था जिसमें उन्होंने जन्म लिया था। लिखने-पढ़ने की मामूली तालीम उन्हें एक अध्यापक घर पर रखकर जरूर दिलाई गई जिस अध्यापकको वह पाठकजी कहकर बोलती थी। उस मामूली पढ़ाई-लिखाई के नाते रामदेवी बाईने अपने मरते दम तक उस पाठक की इतनी कद्र की मानों वह छोटी बच्ची हों और अब भी उससे पढ़ती हों। जब रामदेवी बाई अतरौली जातीं, उन पाठकजी के यहां कुछ भेंट जरूर पहुँचातीं।

रामदेवी बाई के कितने ही बहन-भाई थे पर १८९७ में यानी उनकी बीस बरस की उमर में सिर्फ एक छोटा भाई रह गया। यों वह अपने माता पिता की दो संतान में से एक थीं। इनका भाई इनसे नौ बरस छोटा था। इन्होंने इसे गोद खिलाया था और मरतेदम उस भाई से ऐसी ही मुहब्बत और इतना ही मोह रहा जितना एक मां को अपने बेटे से होता है। इतना गहरा मोह, इतनी गहरी मुहब्बत कभी खाली नहीं जा सकती, इसलिये रामदेवी बाई को मरतेदम तक अपने छोटे भाई से वही श्रद्धा और भक्ति मिलती रही जो उन्हें एक बेटेसे मिलनी चाहिये थी।

रामदेवी का विवाह सन् १८८९ में हुआ जब वह बारह बरस की थी। उन दिनों छोटी उम्र के विवाहका रिवाज था। वह उस रिवाज से कैसे बच सकतीं। यही अच्छा था कि उस बुरे रिवाज के साथ एक भलाई थी कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विवाह नाम के लिये ही होता था। गौने और चाले के नाम से दो रस्में और होती थीं और असली विवाह अपना पूरा रूप इन्हीं रस्मों के बाद लेता था। रामदेवीबाई के कुल मिला कर छः बच्चे हुए। तीन छोटी उम्र में चल बसे और तीन आज तक जीवित हैं—दो लड़कियां और एक लड़का। दोनों लड़कियां बड़ी हैं और लड़का उनसे छोटा, वही छोटा लड़का जैनेन्द्र कुमार के नाम से प्रसिद्ध है, और समाज उसे अच्छी तरह जानता है। आज रामदेवीबाई के सारे कुटुंब की गिन्ती ३५ होती है। वे अपने पोते पोतियों, नाती नतनियों को देखकर इस दुनिया से सिधारीं।

सन् १९२७ में वे विधवा हो गईं और विधवा होने के पांच छः महीने बाद अपने भाई के यहां पहुंच गईं और भाई के कुटुंब की कुटुंबी बन गईं। अगर यह कहना कोई बुरी बात नहीं, कि रामदेवी बाई के अन्दर रहने वाली सारी शक्तियों का विकास विधवा होने के बाद हुआ इसलिये विधवा होना उनके लिये भला रहा, तो हम यह कहेंगे कि स्त्रियों के लिये विवाहित जीवन जितना बन्धन का जीवन है उतना विधवा जीवन नहीं। हां, यह जरूरी है कि एक स्त्री को विधवा होने के बाद यानी स्वाधीन होने के बाद, अपना जीवन समाज सेवा में लगाना चाहिये, तभी वह अपनी स्वाधीनता का ठीक ठीक उपयोग कर सकती है। रामदेवी बाई ने ऐसा ही किया, इसलिये उनका जीवन, दूसरी और विधवाओं की अपेक्षा, अधिक सफल और सुखी रहा।

विधवा होने के तीन महीने बाद उन्हीं के गांव में रहनेवाले एक चालीस वर्ष के विधुर ने उनको जाल में फंसाने की कोशिश की, पर वह किसी तरह न फंस पाईं। अचरज की बात यह है कि यह आदमी करीबी रिश्तेदार था। इस भेद को रामदेवी ने अपनी मौत के दो बरस पहले खोला। रामदेवीबाई के पिता इञ्जिनियर थे यह पहले ही कहा जा चुका है। इसलिये रामदेवीबाई का बालकपन हिन्दुस्तान के एक ही सूबे में नहीं, कई सूबों में बीता। इसलिये उनको थोड़ा थोड़ा ज्ञान पंजाबी, बंगाली, कन्नड, तामिल, मराठी बोलियों का था पर सिर्फ इतना कि उनके दो-चार शब्द याद थे, एक से नौ तक गिनती याद थी। ये शब्द यों इनकी जबान पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चढ़ गये थे कि उनके घर जो धोबी, नाई काम करने आते थे उन से रोज वे शब्द सुनती थी। बचपन में अलग-अलग प्रान्तों में अलग अलग रिवाज देखने की वजह से उनका हृदय काफी उदार बन गया था, इसलिये वह अपनी लड़कियों को ऐसे कपड़े पहना देती थीं जिनका रिवाज बिरादरी में न था। इस वजह उन लड़कियों की खूब हंसी उड़ाई जाती थी। कपड़ों के नाम पर उन्हें सिन्धी, पंजाबी, मराठी नाम दे दिये जाते थे। अपने बचपन की वह जब बातें सुनाने बैठती थीं तब ऐसा लगता था मानों कहानी कही जा रही है। एक जगह का जिक्र सुनाते हुए वह कहने लगीं, वहां जब कुम्हार के यहां हम बर्तन लेने जाते तब वह घड़े को अपने मकान के पीछे फेंक देता और अगर वह टूट जाय तो उसका, साबुत रहे तो लेनेवाले का। उन्होंने यह भी बताया कि वहां मिट्टी की ओखली इतनी मजबूत होती थी कि उसमें मिट्टी की मूसली से कूटा जा सकता था। वैसी ओखली उनके घर में थी। जब वह तामिल की गिनती सुनाती तब जो धुन वह निकालती वह बड़ी प्यारी और अनोखी मालूम होती। जगह जगह के रहन-सहन, ओढ़ावे-पहनावे का उनसे जिक्र सुनने में आनन्द आता था।

एक बात उन्होंने बड़ी अनोखी सुनाई। उनके पिताजी अपने गांव से सोलह सत्रह बरस का रसोइया ब्राह्मण अपने साथ ले गये। वह जब दक्षिण के किसी दूर कोने में पहुंचा तो वह सिर्फ यह कह कर रोने लगा कि मां जी, आप मुझे कहां ले आईं! यहां सूरज दक्षिण में निकलता है! यह सुन उनकी माताजी और उनके पिताजी ठहाका मार कर हंसने लगे और वह रसोइया बेचारा रोने लगा। दस-पांच दिनों में, जो दिशा भूल उस रसोइये को हुई थी, वह ठीक हो गई और फिर उसके लिये सूरज पूरब में निकलने लगा।

एक बार होली के मौके पर भूल से रसोइये की घुटी भांग रामदेवी बाई सारी की सारी पी गईं। दस-पांच मिनट के बाद जब नशा चढ़ा तो अपनी मां के पास पहुंची, लगी कहने—स्लेट फोड़ डालूंगी, स्लेट फोड़ डालूंगी। कबूतर उड़ा दूंगी, कबूतर उड़ा दूंगी—इसी तरह की कई बतुकी बातें कहने लगीं। उनकी मां कुछ समझ न पाईं, यह मामला क्या है? थोड़ी देर बाद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके पिताजी आगये और उन्होंने कहा कि यह भांग पी गई मालूम होती है, रसोइये से पूछ-ताछ की गई तब ठीक ठीक पता लगा। उनको खटाई खिलाकर, दही पिला कर ठीक किया गया, और उन्हें नींद आ गई।

एक बार यह जंगल में खो गईं। उसका जिक्र वह जब भी करतीं तो उन्हें अचरज होता कि मुझे मेरे माता-पिता ने खोया हुआ समझा क्यों? मैं तो जंगल में करोंदे खा रही थी। वह बूढ़ी होने पर भी यह न समझ पाईं कि उन्हें खोजने के लिये माता–पिता क्यों बेताब हुए। अगर वह ढूंढ़ने न जाते तो वह थोड़ी देर में घर पहुंच जातीं।

छुटपन म अंग्रेज बच्चों के साथ खेलने और अंग्रेज अफसरों के साथ बात-चीत करने की वजह से उन्हें अंग्रेजों का डर गिल्कुल नहीं रहा गया था, तभी तो वह अपने भाई के पंजाब-मार्शल-ला में पकड़े जाने के वक्त लाट साहब से मिलने पहुंच गई थीं। इसी तरह एक बार बैतूल के अंग्रेज कलेक्टर को राखी बांधने पहुंच गईं और उसके बदले में कांग्रेस के लिए चंदा मांगने लगीं। उस कलेक्टर ने चन्दा तो नहीं दिया, हां, पांच सेव जरूर दिये जो उन्होंने स्वयंसेवकों में बांट दिये। यह बात सन् १९२२ की है।

एक बंगाली के यहां चोरी हो जाने की कथा वह बड़ी हंस हंस कर सुनाया करती थीं। उनका कहना था कि एक मच्छी बेचने वाली औरत आई। मच्छी खरीदने के लिये बंगाली बाबू की औरत ने उसके सामने ट्रंक खोल कर पैसे दिये। उस मच्छी वाली ने वह सब तालियां देख लीं जो ट्रंक में रखी थीं। वह औरत मच्छी बेचने के बाद बंगाली बाबू के मकान के पीछे एक पेड़ में पेड़ की डालियों की चोटी बांध कर चली गई। रात को उसी पेड़ के पते पर चोर आये और मकान में घुस गये। चोरों को उसी मच्छी वाली से यह भी मालूम हो गया था कि बंगाली बाबू की नौकरानी उनके बच्चे का का रोना बन्द करने के लिये किवाड़ की सांकल बजा कर उनको बहलाया करती है। चोरों में से एक ने बेमतलब सांकल बजाना शुरू कर दी और उसके साथी उसी शोर के नीचे मजे से चोरी करते रहे। और उसका सारा माल ले गये। न जाने उन चोरों ने यह शरारत क्यों की, कि वह घर की जूता–जोड़ियों में से सिर्फ एक एक जूता ले गये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामदेवीबाई का कहना था कि जब वह सुबह चोरी का हाल सुनकर बंगाली बाबू के यहां पहुंची तो एक एक जूते की चोरी देख कर सहानुभूति की जगह हंसने लगीं। उनका कहना था कि वह ही नहीं, जो कोई आता उस एक एक जूते की चोरी को देखकर हंसने लगता और सांकल वजा कर चोरी करने की बात भी कम हंसी की नहीं थी।

एक बार वह सावन की तीज के दिन गुलगुले बना कर मजदूरों को बांटने लगीं। उन दिनों उनके पिताजी जहां काम करते थे वहां कहत-साली यानी अकाल पीड़ितों का काम छिड़ा हुआ था। उनके गुलगुलों को बंटते देखकर सैकड़ों मजदूर गुलगुले लेने आ पहुंचे। उनके पिताजी इस तरह की भीड़ देख कर आ पहुंचे और रामदेवी बाई से कहने लगे, लो अब बांटो इनको गुलगुले! अब वह बड़ी घबड़ाई! और कुछ न बन पड़ा, उनके पास जो दस-बीस चांदी की नई नई दुअन्नियां थीं और जो उन्होंने बड़े शौक से इकट्ठी की थीं वह सब उनमें बांट दी। और उनके पिताजी खड़े खड़े तमाशा देखते रहे और हंसते रहे।

एक बार अपन पिताजी के साथ वह ऐसी जगह पहुंची जहां बिच्छू बहुत थे। वहां एक दफे ऐसा हुआ कि तीन दिन तक हर रोज एक बिच्छू इनको काटता और चौथे दिन ऐसा हुआ कि ये चारपाई पर लेटीं थीं और जैसे ही घुटना पास की दीवार से लगा कि एक बिच्छू ने डंक मार दिया, यह हाथ से दीवार का सहारा लेकर उठीं कि एक बिच्छू ने हाथ में डंक मार दिया, जैसे ही चारपाई से नीचे उतरीं कि एक ने पांव में डंक मार दिया। अब यह लगीं रोने चिल्लाने। इनके पिताजी दौड़े हुए आये और जब इन्होंने अपने पिताजी से तीन बिच्छुओं के डंक मारने की बात कही तो इनके पिताजी बोले, बिटिया, देखो अबतक तुम्हारे छः बिच्छुओं ने डंक मारा है, बस, जिस दिन इक्कीस बिच्छू तुम्हारे डंक मार चुकेंगे उस दिन तुम्हारा वदन इतना पक्का हो जायगा कि फिर कोई बिच्छू तुम्हें डंक मारे तो तुम्हें कोई तकलीफ न होगी। रामदेवी बाई का कहना था कि अपने पिताजी की बात सुन कर वह रोना छोड़कर हंस पड़ीं और हंस तो उनकी माताजी भी पड़ीं, पर उन्होंने हंसते हसते उनके पिताजी को झिड़की दी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और रामदेवी को गोद में लेकर कहने लगीं, यह भी कोई हंसी का मौका है। जवाब में उनके पिताजी बोले, हंसी का मौका हो या न हो उन्होंने अपनी रोती बिटिया को एक बार तो हंसा ही दिया। खैर, कुछ दवा-दारू की गई। उसके बाद बिच्छू ने कभी नहीं काटा।

नई नहर के खोले जाने की रस्म अदा होने को थी। मिठाई के पच्चीस थाल बाबू लोगों में बांटने के लिये घर में रखे थे। उन थालों में एक मिठाई थी, खोये के शकरपारे। वह रामदेवीबाई को खूब पसन्द आए। और दो थाल के शकरपारे सब के सब निकाल कर खा लिये, कुछ भाई को खिला दिये। उनके पिताजी ने यह देख लिया। रामदेवी से बोले, बिटिया, शाम को इन थालों की मिठाई बांटी जायगी, बांटने के पहले इनकी तोल होगी, थालों को ढंक कर रखना, चिड़िया या कोई जानवर खराब न करे। पिताजी के ये शब्द सुन कर रामदेवीबाई बड़ी घबरायीं। उन्होंने रसोइये से आटे के शकरपारे बनवाकर, उन्हें पगवाकर उस कमी को पूरा कर दिया। शाम को जब थाल बंटने लगे तब तोलना तो एक तरफ किसी को भी इन थालों की गिनती करने की फुरसत न थी। रात को पिताजी को जब पता चला तब वह अपनी बिटिया की होशियारी पर खूब हंसे। रामदेवीबाई की समझ में न आया, इसमें हंसने की क्या बात है? उनके पिताजी ने समझाया, बिटिया, जहां हजारों मन लड्डू बांटे जा रहे हैं और सैंकड़ों सेर मिठाई, वहां तोलने का क्या सवाल? तोलने की बात तो उन्होंने अपनी बिटिया से इसलिये कही थी कि आगे वह और शकरपारे न निकाले।

खाते-पीते घराने में जन्म पाकर भी उन्होंने कभी अपने को आलसी नहीं बनाया। जिस घराने में वह ब्याही गईं वह घराना अपनी हाथ की कमाई पर गुजर-बसर करता था, पर उस घर में यह आलसी साबित नहीं हुईं। उस घर में वह ऐसी बन गईं मानों उन्होंने बचपन से घर के सब काम-काज किये हों। वह अपनी सास की काफी प्यारी थीं। सास का सुख उनके भाग्य में अधिक न बदा था, थोड़े दिन ही मिला। अपनी मेहनत से घर सम्हालने की वजह से उनका गार्हस्थ्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवन खासा सुखी रहा। तीस बरस की उम्र में विधवा होने के बाद उन्होंने अपने भाई का घर इतनी अच्छी तरह सम्हाला मानों वह घर उनका अपना हो। उनका भाई उनसे छोटा था, यह उसे प्यार करती थीं और वह इनको मां की तरह समझता था। यह अपनी भाभी की ननद बन कर नहीं रहीं, सास बनकर नहीं रहीं, सदा मां बन कर रहीं। इसलिये ननद-भौजाई की कलह को घर में जगह न मिल पाई। इस तरह की कलह तभी होती है जब ननद और भौजाई के स्वार्थ अलग अलग होते हैं। अब दोनों का एक स्वार्थ था, फिर कलह के बीज को पानी कहां से मिलता?

जब यह अपने भाई के यहां आईं तब इनकी दो लड़की थीं और एक लड़का। छोटी लड़की की शादी हो चुकी थी। लड़का ढाई तीन बरस का था। बड़ी लड़की की शादी न होने की वजह यह थी कि वह लड़की जब नौ महीने की थी तभी से नानी ने उसे अपने पास रख लिया था, और वह बराबर वहीं रही।

बड़ी लड़की की शादी भाई के यहां से ही हुई। वह शादी ऐसी नहीं है जिसका हाल पाठकों को न बताया जाय। उस शादी में तीन सौ आदमियों की बरात आई थी। उन दिनों बरात के चार दिन ठहरने का रिवाज था। देश की राजनीति की तरह समाज और जाति की समाज-नीति और जातिनीति भी होती है और इन नीतियों में भी इस तरह की उखाड़-पछाड़ चलती रहती है जिस तरह राजनीति में। अतरौली जहां से रामदेवी की बड़ी लड़की की शादी हुई अपनी जाति-नीति रखती थी। जाति का एक दल रामदेवी के भाई के खिलाफ था। उस दल ने बरातियों को आमतौर से और दूल्हे के पिता को खास तौर से बहका और भड़का दिया। बहकाया-भड़काया इस बात पर कि रामदेवी के मामा इस योग्य नहीं हैं कि बिरादरी को खाना परोस सकें। नतीजा यह हुआ कि बराती बिगड़ गये और अड़ गये कि जबतक रामदेवी के भाई अपने मामा को घर से अलग न करेंगे तबतक शादी न होगी, बरात लौट जायगी। यह सुनकर रामदेवी बाई घबड़ा गयीं, उन्होंने अपने भाई से सलाह ली। उनके मामा भी घबरा उठे। उन्होंने अपने भानजे-भानजी को सलाह दी कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

.CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके लिये यही ठीक है कि वह घर छोड़ कर चल दें और शादी को बिना किसी झंझट के हो जाने दें, पर यह बात रामदेवी के भाई को बिलकुल न जंची। भाई इस बात पर डट गये कि चाहे शादी हो या न हो मामा घर से नहीं निकाले जायेंगे। मामा पर झूठे इलजाम लगाकर अतरौली की बिरादरी का जो दल हमें दबाना चाहता है उसकी जीत हम नहीं होने देंगे। अपने भानजे की यह बात सुनकर मामा बहुत घबराये, वह अपने भानजे की हिम्मत से खुश थे, पर उनके सामने बड़ा तूफान था, बड़ी बदनामी थी, बरात लौट जाने से गांव भर में बदनामी फैलती। मामा के बहुत समझाने बुझाने पर भी रामदेवी का भाई टस से मस न हुआ। रामदेवीबाई ने आखिर अपने भाई से कहा मैं कुछ नहीं जानती जो तुम करो मैं साथ हूं। भाई ने यह सुनकर मकान का दरवाजा बन्द कर दिया, दो घण्टे की मजबूती के बाद बरात की तरफ से सुलह के पैगाम आने लगे। आखिर बरात और अतरौली की बिरादरी ने मिलकर यह फैसला किया कि अगर मामा एक थाली मंदिर में चढ़ा दें तो बरात को उनके हाथ से खाने में कोई ऐतराज न होगा। भाई इतने पर भी राजी न थे, पर जब और साथी इस फैसले को ठीक समझे तो उन्होंने मान लिया और फिर शादी हो गई। इस घटना ने भाई-बहन को और ज्यादा गाढ़े रिश्ते में बांध दिया। अैसे मौके पर रामदेवीबाई का अपने भाई का साथ देना मामूली बात न थी। अपनी लड़की की शादी के वक्त शायद ही कोई मां इतनी हिम्मत दिखा सकती है। अगर रामदेवी बाई में इतनी हिम्मत न होती तो आगे जो वह समाज और देश के मैदान में कूद कर कर सकीं वैसा न कर पातीं।

हम ऊपर लिख चुके हैं, रामदेवीबाई का हृदय इतना कमजोर था कि भाई और पिता के मरने पर उनके लिये कफन आ गया था, फिर उनमें इस तरह की हिम्मत कहां से आ गई कि वह अपनी लड़की की शादी के वक्त बरात लौट जाने की जोखम उठाने को तैयार हो गईं और अपने आगे के जीवन में ऐसे काम कर सकीं जिनकी आशा इतने कमजोर हृदय की महिला से नहीं की जा सकती।

वे कारण ये हैं :

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामदेवी बाई का तीन वरस का बालक जैनेन्द्र बहुत बीमार था। उसकी बीमारी की हालत में एक भिखारी घर में आ पहुंचा। रामदेवी के भाई घर पर न थे। उसने बीमार बच्चे को देखकर अच्छे होने की असीस दी। इस असीस के वदले रामदेवी ने उसको चार पूड़ियां दे दीं। वह बाई की कमजोरी भांप गया। उसने बच्चे का हाथ देखने की बात कही। हाथ देखकर उसने कुछ अच्छी बातें बतलाईं। उन बातों के बदले उसे एक दुअन्नी मिल गई। दो-चार वढ़िया बातें वता कर एक धोती इनाम में पा गया। उसका अब भी पेट न भरा, एक रुपया और चाहता था, इतने में रामदेवी का भाई आ गया। उसने उसको भी आँखें दिखा कर प्रभावित करना चाहा। पर कर न सका। अब दोनों हाथ खाली दिखाकर और उनको मल कर बाजरे के दाने गिराये। बोला तेरे घरमें बरकत होगी, ला निकाल एक रुपया। रामदेवीने अपने भाई की तरफ देखा। भाई की मन्शा नहीं थी कि उसको रुपया दिया जाय। वह इशारा समझ गई और उस से बोली तुम फिर आना, जब हमारा बच्चा अच्छा हो जायगा, हम एक रुपया नहीं, पांच रुपये तुम्हें देंगे। भिखारी समझ गया और चल दिया। रामदेवीबाई एकदिन भाई से बोली साधु अच्छा था उसकी असीस का फल भला हुआ, बच्चा बिलकुल अच्छा हो गया। अगर वह आयेगा तो मैं जरूर पांच रुपये दूंगी। भाई यह सुनकर बोले, पांच नहीं दस देने चाहिये, पर देने उसे चाहिये जिसने तुम्हारे बच्चे को अच्छा किया और मकान के कोने में रखे हुये डण्डे की तरफ इशारा करके बोले कि असल में तो तुम्हारे बच्चे को इस डण्डेनें अच्छा किया है। और जो पांच–दस तुम्हें देने हों, इस डण्डे को दो। रामदेवीबाई कुछ न समझ पाईं। वह बोलीं, इसका मतलब ?

भाई बोला, मतलब यह कि, लो यह अपनी धोती, लो यह अपनी-दुअन्नी और रही वह चार पूरी जो तुमने साधु को दी थीं वे पहुंच गईं तुम्हारे गाय के पेट में। यह सब काम इसी डण्डे ने किये हैं जो उस कोने में रखा है। रामदेवी बाई बोली, तुमने उस साधु को पीटा था ? भाई बोला, साधु इतना दमदार नहीं था कि उसे पीटने की नौबत आती। उसने डंडा देखकर ही सब बात सच सच बता दी थी। पूरियां ले जाने के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिये वह मचलता रहा पर हमने उसको उनका भी पात्र नहीं समझा यह सुनकर रामदेवीबाई हंस दीं और बोलीं, पूरी न लेते तो ठीक था। उनका भाई बोला, पूरी न लेता तो बहुत बड़ी भूल होती। रामदेवीबाई अपने भाई की यह बात भी मान गईं। इस घटना का इतना गहरा असर उनके दिल पर हुआ कि वह एकदम बदल गईं। उसके कुछ ही दिनों बाद उन्होंने वह काम कर दिखाया जिसे देखकर पड़ौसी दांत तले उंगली दाब कर रह गये।

वह घटना यह थी—

एक दिन दोपहर के वक्त एक भिखारिन आई, वह सीधी अन्दर घुसी चली आई। अन्दर आकर कमरे में चारों तरफ नजर डालने लगी। रामदेवीबाई उठी और उसको निकल जाने के लिये कहा, पर वह राजी से न निकली। आखिर ढकेल कर उसे निकाला गया। वह चली गई, बात आई गई हो गई। गर्मियों के दिन थे। भाई भावज और तीनों बच्चे बाहर आंगन में सोये थे। रामदेवीबाई कमरे के दरवाजे में चारपाई अड़ा कर सोई थीं। रात को एक बजे उनको कमरे में ऐसा मालूम हुआ कि कुत्ता है। उन्होंने उसे दुत्कारा। चारपाई के नीचे होकर निकलने लगा। रामदेवी बाई ताड़ गईं, यह कुत्ता नहीं, आदमी है। बस जैसे ही वह निकला, उन्होंने उस चोर का हाथ पकड़ लिया और चोर चोर चिल्लाना शुरू कर दिया। पड़ोसी जाग गये, पर पड़ौसी निकले निरे बाबू लोग। हाथ में लकड़ी लेकर अपने आंगन में से मकान की दीवार पर मारने लगे और अभी आते हैं, अभी आते हैं कह चिल्लाने लगे। जब चोर हाथ न छुटा सका तो उसने रामदेवी के हाथ में काट लिया। पकड़ ढीली हो गई और चोर भाग गया। इस हू-हक्कड़ में उनकी भौजाई जाग गई वह इतनी डरी हुई थी कि मदद करने की जगह आंगन में सोये अपने पति के ऊपर गिर पड़ीं। तब कहीं वह साहब जागे। अबतक चोर भाग चुका था। रामदेवीबाई की सूझ और हिम्मत का नतीजा यह निकला कि चोर कुछ न ले जा सका। अब रामदेवीबाई की हिम्मत और बढ़ गई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामदेवी के भाई नौकर थे। उनको १५ दिन की छुट्टी मिली। उस छुट्टी में ही वे तीरथ कर आना चाहते थे। जाना तय हो गया। जहां वह नौकर थे, फिरोजाबाद बस्ती उस से छः मील दूर थी। फिरोजाबाद में रामदेवी बाई के कुछ रिश्तेदार रहते थे। यह तय हुआ कि फिरोजाबाद जाकर अपने रिश्तेदारों से मिला जाय। यात्रा पर जाने से पहले फिरोजावाद पहुंच गये। रिश्तेदारों ने सलाह दी कि यात्रा जाने से पहले किसी ज्योतिषी से शुभ दिन निकलवा लेना चाहिये। यह सुनकर रामदेवी के भाई बोले कि उनके पास सिर्फ १५ दिन हैं और १५ दिन में ही यात्रा पूरी करनी है इसलिये ज्योतिषी के पास चलना बेकार है। उनके भाई मजबूत दिल के थे, शगुन में विश्वास नहीं करते थे। रामदेवीबाई भी अब काफी पक्की हो चुकी थी और पूरी नहीं तो बहुत कुछ अपने भाई के खयाल की बन गई थीं। उन्होंने यही ठीक समझा कि ज्योतिषी के पास न जाया जाय, पर रिश्तेदार न माने और ज्योतिषी के पास ले गये। ज्योतिषी ने अपना पोथा देखकर यह बताया कि आठ रोज कोई शगुन नहीं बनता और कल की चाला है ही नहीं। इस पर उसके भाई बोले तो फिर कल का दिन क्यों खराब किया जाय? हुआ वही, वह कल ही तीर्थ के लिये चल पड़े।

जिस रेल से वे सवार हुए वह पैसेंजर थी। जहां से वे हुए वहां तेज गाड़ियां ठहरतीं न थीं। होनहार की बात कि बैठने के लिये रेल का ऐसा डब्बा मिल गया, जिसमें जनाना और मर्दाना एक दूसरे से लगे थे। रामदेवी और तीनों बच्चे जनाना डब्बे में बैठ गये और पास के डब्बे में उनके भाई बैठ गये। जिस डब्बे में उनके भाई थे उसमें सिर्फ एक मुसाफिर और था। गाड़ी चल दी। जब विन्ध्याचल स्टेशन आने को हुआ तब न जाने रामदेवीबाई को क्या सूझा कि वे तीन बरस के जैनेन्द्र को चलती ट्रेन में अपने भाई को देने लगीं, भाई को आवाज दी। भाई ने आगा-पीछा सोचे बिना जैनेन्द्र को ले लिया। इस बात पर भाई के पास बैठा मुसाफिर बुरी तरह बिगड़ा। उसका बिगड़ना मुहब्बत का था बरदाश्त कर लिया गया। थोड़ी देर में विन्ध्याचल स्टेशन आ गया। भाई बच्चे को फिर वापस देने के लिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विन्ध्याचल स्टेशन पर उतरा और उस को उसकी मां के सुपुर्द कर दिया। थोड़ी देर रामदेवी और भाई में बात होती रही। इतने में गाड़ी चल दी। जब रामदेवी का भाई अपने डब्बे में पहुंचा तो उसके ओढ़ने की अण्डी वहां मौजूद न थी। साथी मुसाफिर उसे लेकर चल दिया था। वह विन्ध्याचल उतर गया था। अण्डी खोने की बात जैसे ही रामदेवी को मालूम हुई, उन्हें ज्योतिषी की याद हो आई और भाई से बोली, देखा, तुम ज्योतिष को नहीं मानते अब तीस रुपयों की अण्डी खो दी या नहीं। भाई हिम्मत वाला था, बोला, बहन, अण्डी खोई नहीं है, बड़ा अच्छा शगुन हुआ है, अगला स्टेशन मिर्जापुर है। हम सब वहीं उतरेंगे। तुम सब उतरने के लिये तैयार हो जाओ, अण्डी हमें जरूर मिलेगी। और साथ साथ तेज गाड़ी, जो पीछे आती है, मिर्जापुर बड़ा स्टेशन है वहां वह ठहरेगी। उसमें बैठकर इस गाड़ी से पहले हम वहां पहुंच जायेंगे जहां पहुंचना है। रामदेवीबाई एक दबी हंसी हंस दीं। हुआ वही जो भाई ने कहा था। मिर्जापुर से छः आने में वापिसी इक्का किया गया। और रामदेवीबाईके भाई अकेले विन्ध्याचल गये, वहां से अण्डी ले आये और फिर तेज गाड़ी पकड़ ली। गाड़ी में बैठकर बहन से बोले, देखा, बहन कैसे अच्छे शगुन से निकले थे, खोई चीज मिल गई। रामदेवीबाई ने बात गांठ बांध ली—शगुन कुछ नहीं होते, आदमी के मन की मजबूती और कमजोरी ही सब कुछ है। इसी यात्रा में दो घटनाएं और हुईं। एक यह कि तीरथ में पहुंच कर ऐसा हुआ कि रामदेवीबाई की भौजाई तीन दिन तक यात्रा नहीं कर सकीं। इस वजह से वहां तीन दिन और रुकना पड़ा। इसको लेकर उनके भाई बोले, देखो, कैसे अच्छे शगुन से निकले हैं कि तीन दिन की जगह ५ दिन तीरथ पर रहने को मिल गये। बनारस से लौटते वक्त मुगलसराय के वेटिंग रूम में रामदेवीबाई की छोटी लड़की पांव में पहनने की पाजेब छोड़ आई। सब लोग रेल में आकर बैठ गये। रेल चलने के कुछ ही देर पहले इस बात का पता चला। रामदेवीबाई अपने भाई से बोलीं, शगुन से न निकलने पर कुछ न कुछ नुकसान होकर रहेगा। भाई बोले, वह क्या? वह बोलीं—छोटी लड़की अपनी पाजेब वेटिंगरूम में छोड़ आई। भाई विश्वास के साथ बोले, हम बड़े शगुन से निकले हैं, पाजेब मिलेगी, हम अभी जाते हैं। जैसे ही वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेटिंगरूम में पहुंचे कि पाजेब झाड़ू लगाने वाली मेहतरानी हाथ में लिये खड़ी मिली, वह उसे दो पैसे इनाम देकर ले आये और बहन के हाथ में दे दी। इस घटना ने रामदेवी बाई के दिल को बहुत पक्का कर दिया और साथ साथ भाई पर उनकी बेहद श्रद्धा हो गई।

रामदेवी को भाई के घर में वे सब अधिकार प्राप्त थे जिनको पाने की एक बाई के मन में इच्छा हो सकती है। भाई ने रामदेवी को बहन समझा ही नहीं, जब समझा तब मां समझा और रामदेवीबाई ने भी हर तरह वही हक अदा किया जो एक मां को करना चाहिए। भाई के घर में एक नौकर था पर दफ्तर के और नौकरों से भी काम लिया जा सकता था और लिया जाता था। घर के इन्तजाम का सारा भार रामदेवीबाई पर था। एक दिन का जिक्र है किसी वजह से घर में खाना बनाने के लिये लकड़ी बिलकुल न रहीं। रामदेवीबाई ने एक दो बार भाई से लकड़ियों का जिक्र किया, भाई ने कुछ ध्यान न दिया। आखिर एक दिन खाना बनना बन्द कर दिया गया। जब भाई घर में आये तो तीन बरस का जैनेन्द्र रोता हुआ मिला। रोने का कारण पूछा तो वह बोला अम्मा ने रोटी नहीं बनाई, भाई ने आगे कुछ न पूछा और बच्चे को साथ लेकर घर भर के लिये पूरी और मिठाई खरीद लाये। उस दिन घर में पूरा त्यौहार मना। रामदेवीबाई यह देख क्रोधभरी हंसी हंस दीं। उनके भाई बोल उठे, अगर लकड़ी मैं नहीं लाया था तो नौकर से क्यों नहीं मंगा ली गईं। उस दिन से रामदेवीबाई ने समझ लिया कि उनके भाई घर के काम में कोई दखल नहीं देना चाहते। अब घर की अर्थ व्यवस्था का सारा भार अपने आप उनपर आ गया। घर में एकता बनाये रखने की यही सब से बड़ी कला है। जिस घर का एक स्वार्थ हो वहां सुख बसेगा ही। इसलिये रामदेवी-बाई के घर में सुख-शांति दोनों निवास करते थे।

जनवरी सन् १९१० में भाई ने नौकरी छोड़ दी। नौकरी छोड़ने का पता रामदेवीबाई को फरवरी के पहले हफ्ते में लगा क्यों कि उन दिनों भाई का सारा कुटुंब रामदेवी बाई के साथ अतरौली था और उनके भाई फतह-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुर में नौकर थे। नौकरी छोड़ देने का रामदेवीबाई ने हल्का-सा दुख तो माना पर प्रबन्ध की योग्यता पर भरोसा कर उस दुख को सह लिया।

फरवरी सन् १९१० के आखिरी हफ्ते में वह अपने भाई के साथ तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़ीं। घर का प्रबन्ध अपनी मौसी के हाथ सौंप गईं।

उन दिनों तत्त्व प्रकाशनी सभा इटावा का इटावा में जलसा था। सबसे पहले ये दोनों बहन भाई वहीं पहुंचे। उस सभा में एक यात्रा-संघ बना। उस संघ ने अपना यह कार्यक्रम बनाया कि गुरुकुल की स्थापना के लिये ऐसे काम करने वालों की खोज की जाय जो नाम-मात्र के वेतन पर काम कर सकें। इसके लिये तीर्थ-स्थानों में होते हुए और शहरों को भी रखा जाय। इस संघ में १९ आदमी शामिल हुए। उन १९ में भाई अजित प्रसादजी, लखनऊ, अर्जुनलालजी सेठी, जयपुर भी शामिल थे। भाई अजितप्रसादजी की लड़की सरला और सेठी अर्जुनलालजी का लड़का प्रकाश-चन्द्र भी था, उसकी उम्र सात-आठ के लगभग रही होगी। इस संघ की कहानी बड़े मार्के की है, वह अपना अलग महत्त्व रखती है। इसलिये यह कभी अलग ही लिखी जायगी। यहां तो सिर्फ उसका इतना ही जिक्र किया जायगा जितना इसका रामदेवीबाई से संबंध है।

रामदेवीबाई इस संघ की बाइयों से घुलमिल कर एक हो गईं और बहुत जल्दी ही बाइयां एक कुटुंब की मालूम होने लगीं। इस यात्रा में बनारस, शिखरजी, जबलपुर और मैसूर के सब तीर्थ, श्रमणबेलगोल कार-केल वगैरह और पश्चिमी तट के मूडबिद्री और बंबई, नासिक, गजपंथा, सोनागिर वगैरह सब शामिल थे। इस यात्रा में रेल का किराया, खाना खर्च सब मिला कर एक आदमी पीछे ५६ रुपये कुछ आने हुए थे। सारा खर्च एक जगह से होता था। सब में बराबर बराबर बांट दिया जाता था।

बाइयों में जबलपुर तक हलका हलका पर्दा रहा पर जैसे ही वह प्रान्त शुरू हुआ जहां बाइयां पर्दा नहीं करतीं, संघ की सब बाइयों ने पर्दा छोड़ दिया। श्रमणबेलगुल में बाइयों ने वह काम किया जिसको करने में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकबार मर्द भी हिचक जाते। वहां महासभा* का जलसा था और होनहार कि जलसे के मौके पर बारिश आ गई। जो चट्टियाँ दस रुपये किराये पर ली गई थीं वे बारिश को जरा न रोक सकीं। यह हालत देखकर संघ के उन्नीसों आदमी पास ही खड़े खाली तम्बू में जा घुसे और उस पर कब्जा कर लिया। यह असल में सेठ माणिकचन्द्रजी, बम्बई वालों के लिये खड़ा किया गया था। सेठजी के साथ मगनबहन भी थीं।

श्रमणबेलगुल के प्रबन्धकर्त्ताओं ने संघ वालों से यह तम्बू लेना चाहा। उन्होंने देने से इन्कार कर दिया। अब उनके हाथ में एक तरकीब रह गई कि तम्बू गिरा दिया जाय और इस तरह इन सबको निकाल बाहर किया जाय। जब यह नौबत आई तब रामदेवीबाई ने यह सलाह दी कि जब हम सबने पर्दा छोड़ दिया है तब क्यों न तम्बू गिराने वालों का मुकाबला किया जाय? रामदेवीबाई की यह तजबीज सब मर्दों को पसन्द आई और मर्द सबके सब बाइयों को अकेला छोड़ पास के छोटे पहाड़पर जा बैठे। जैसे तम्बू गिराने के लिये मजदूरों ने आकर खूंटे उखाड़ने शुरू किये सब बाइयां उन लकड़ियों को लेकर, जो उन्होंने शिखरजी में खरीदी थीं, उन मजदूरों पर दौड़ पड़ीं। मजदूर बिचारे क्या करते, तम्बू छोड़ भाग गये और एक दो खूंटे जो उन्होंने उखाड़े थे उनको बाइयों ने टेढ़े-सीधे ठोंक लिया। यह देखकर जो साहब मजदूर लेकर आये थे उनमें भी भलमनसियत जाग गई और उन्होंने मजदूरों को बुला कर उन खूंटों को ठीक से गड़वा दिया और फिर मेले के आखिर तक उस तम्बू पर संघ का ही कब्जा रहा। एक बार मगनबहन खुद उस तम्बू में आई और बोलीं कि उन्होंने तो यह तम्बू शास्त्र सभा के लिये रखा था। उस पर सब बाइयां बोल उठीं, हां, हमारे रहते शास्त्र-सभा इसमें बहुत अच्छी तरह हो सकती है और हमारे साथ शास्त्र पढ़ने वाले अच्छे से अच्छे पंडित मौजूद हैं। यह सुन कर, मगनबहन हंस दी और वापिस चली गईं।

श्रमणबेलगुल से आगे इस संघ के दो टुकड़े हो गये। एक मूडबिद्री होता हुआ जहाज के रास्ते बम्बई पहुंचा, दूसरा रेल के रास्ते बेलगांव की

* दिगम्बर जैन महासभा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तरफ चल दिया। जो टुकड़ी मूड़विद्री की तरफ चली, रामदेवीवाई उसी में थीं। श्रमणवेलगुल से मूडविद्री तक बैलगाड़ियों का रास्ता था। रास्ते में कई अनोखी घटनायें हुई पर उनका सम्बन्ध रामदेवीजी से न होने से छोड़ी जाती हैं। वहां से संघ मूडविद्री पहुंचा, मूडविद्री से मंगलोर पहुंचा, मंगलोर से वम्बई के लिये जहाज में बैठना था, यह सबको मालूम था कि जहाज़ में कुये का पानी किसी तरह नहीं मिल सकता और यात्रा चार रोज की थी, जहाज लद्दू जहाज था। जहां ठहरता कम से कम दो घण्टे और ज्यादा से ज्यादा छ: घण्टे ले लेता। रामदेवीवाई और उनके भाई दोनों नल का पानी न पीते थे। इसलिये एक मटका कुए का पानी साथ रखा गया। मंगलोर में जहाज बिलकुल किनारे नहीं आता था। वहाँ से एक मोटर बोट सवारियों को जहाज तक ले जाती थी। रामदेवीबाई अपने भाई के साथ उस मोटर बोटमें सवार हुई। पीने के पानी का घड़ा साथ था। मोटर बोट अभीतक एक फर्लांग भी न चल पाई थी कि हवा खूब जोरों की चलने लगी और मोटरबोट इस तरह हिलने लगी मानों वह झूले में बड़े बड़े झोटे ले रही हो। इस हिलन डुलन से सब मुसाफिरों के चेहरे उदास हो गये। रामदेवी बाई घबरा गईं। थोड़ी देर में समुद्र का पानी जोर के थपेड़े मारने लगा। और उछल उछल कर मोटरबोट में आने लगा। अब मुसाफिरों की घबराहट और बढ़ी। मोटर बोट के आदमी तेजी के साथ पानी उलीचने में जुट गये। यह सब देख रामदेवीबाई का चेहरा उतर गया। पर जैसे ही उनकी नजर अपने भाई पर पड़ी वैसे ही उनकी सारी उदासी भाग गई। उनके भाई हंस हंस कर उस हवा का और उस पानी की बौछार का आनन्द ले रहे थे। जहाज में बैठकर जब रामदेवीबाई ने अपने भाई से मोटरबोट में हंसने का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि उनकी निगाह हवा और पानी की बौछार पर न थी उनकी निगाह उन मल्लाहों पर थी जो मोटर बोट चला रहे थे, और जब वह सब खुश थे तब डरने की कोई बात न थी। अगर मोटरबोट को कोई खतरा होता तो सबसे पहले उदासी मल्लाहों के चेहरे पर आती, यह सुनकर रामदेवीबाई बोलीं, तुमने मल्लाहों के चेहरों को अपना माझी माना और मैंने तुम्हारे चेहरे को अपना माझी माना। तुम्हें देखकर मैंने समझ लिया कि डरने की कोई बात नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हां, तो यह मोटरबोट आधघण्टे में जहाज तक पहुंच गयी और जहाज पर जब सीढ़ियों के जरिये संघ चढ़ने लगा तो संघ के लोग ऐसे हिल रहे थे मानों झूले पर बैठे हों। ज्यों त्यों कर संघ के सब सात आदमी जहाज पर पहुंच गये और जब पानी का घडा ऊपर चढ़ाने लगे तो तीसरी सीढ़ी से वह घड़ा गिर गया और वहीं फूट गया। संघ के सब साथी घबड़ा उठे। पर रामदेवीबाई जरा भी न घबड़ाई।

जहाज थोड़ी देर में चल दिया। अभी एक मील भी न चला होगा कि रामदेवीबाई को उलटी होना शुरू हो गई। संघ की दो बाइयों का भी यही हाल हुआ। मर्दों में से किसी को कै नहीं हुई। रामदेवीबाई मंगलोर से बम्बई तक उल्टा मुंह किये लेटी रहीं, वे समुद्र की तरफ देख ही नहीं सकती थीं, देखते ही उल्टी आने लगती। रास्ते में जहाज मारमागोआ के किनारे पर लगा। वहां बड़ी मुश्किल से अेक गिलास कुए का पानी मिल सका और वह रामदेवीबाई के हिस्से में आया, और थोड़ा सा पानी उसीमें से उनके भाई को भी मिल गया। दूसरी बार जहाज गोवा में किनारे लगा। वहां जहाज को काफी देर ठहरना था, इसलिये जहाज से सब यात्री किनारेपर आ गये। पास ही एक पहाड़ी कुआ था, उस कुए में पानी बिलकुल नहीं था। बहुत नीचे बूंद बूंद करके पानी झरता था, उसके नीचे लोटा लगाने से पांच सात मिनट में लोटा भर जाता था। इतना अच्छा था कि पानी पीने वालों की तादाद बीस-पच्चीस से ज्यादा न थी। बारीबारी से लोगों का नम्बर आता था। जब संघ का नम्बर आया तो हममें से एक सूरजमल छावड़ा नामी सज्जन लोटा लेकर कुए पर पहुँचे। उन्होंने ज्यों त्यों कर पौन लोटा पानी बाहर खींचा और उसको छान कर रामदेवीबाई को दिया। वह अभी एक घूंट भी न पी पाई थीं कि एक झगड़ा खड़ा हो गया और वह झगड़ा यह कि छावड़ा जी ने उस छन्ने का धोवन जिसको बिनछन नाम से पुकारते हैं कुए में डाल दिया। बस अब क्या था, जहाज के मुसाफिर, वहां के लोग सब गालियां देते हुए छावड़ा जी को मारने दौड़े। इसी झगड़े में रामदेवीबाई का पानी खिंड गया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और वे एक घूंट भी न पी पाईं। पन्द्रह-बीस मिनट में वह झगड़ा शान्त हुआ। छावड़ाजी को माफी मांगनी पड़ी और फिर बड़ी मुश्किल से रामदेवीबाई के भाई को पानी खींचने की इजाजत मिली, और फिर ज्यों त्यों कर डेढ़ लोटा पानी बड़ी मुश्किल से मिल पाया। वहां से जहाज चला तो बम्बई किनारे लगा। उस वक्त रात के आठ बजे थे। रामदेवीबाई जहाज से नीचे उतर आईं और प्लेटफॉर्म पर आ गईं। पर वे अपने भाई से बोलीं, मालूम तो ऐसा होता है कि प्लेटफॉर्म पत्थर का है पर हिल ऐसे ही रहा है जैसे जहाज हिलता था। जवाब में भाई ने कहा कि उसको भी ऐसा ही मालूम होता है। यह हिलने की हालत हीराबाग धर्मशाला तक रही। दूसरे दिन आठ-नौ बजे बाद धर्मशाला का हिलना बन्द हुआ। रामदेवीबाई शाम तक बिलकुल ठीक हो गईं। दो तीन दिन बम्बई की जी भर सैर की, वहां से आगरे के लिये चल पड़ीं। यहां से संघ और भी बिखरा। पांच आदमी जयपुर की तरफ चले और रामदेवीबाई और उनके भाई आगरे की तरफ। रास्ते के सब तीर्थों को देखते हुए रामदेवीबाई ग्वालियर पहुंचीं। ग्वालियर के पास पनहरा नाम का एक स्थान है, वहां भी कोई मन्दिर था, रामदेवीबाई वहां भी गईं। उनके भाई भी साथ थे। पनहरा मन्दिर के नीचे एक भौंरा यानी गुफा थी। उसमें कुछ मूर्तियां थीं। उनके दर्शन की सूझी। वहां के मन्दिर का एक माली तेल की जलती हुई बत्ती लेकर उस गुफा में आगे आगे चला। उस माली के पीछे रामदेवीबाई का भाई और सबके पीछे थीं रामदेवीबाई। गुफा थी तो बहुत ही छोटी शायद तीन चार गज की होगी। पर उसके अन्दर दम घुटने की जो तकलीफ हुई उससे ऐसा मालूम हुआ कि गुफा कई मील लम्बी है। खैर ज्यों त्यों कर उस जगह पहुंचे जहां छोटी सी कोठरी थी और उसमें दस पांच मूर्तियां थीं। उनमें कोई साबित न थीं। कहीं न कहीं से जरूर खण्डित थीं। रामदेवीबाई के भाई ने वहां ज्यादा देर ठहरना ठीक न समझा। एक मिनिट से भी कम में बाहर निकल दिये और अब सब से आगे रामदेवीबाई, उनके पीछे उनका भाई और सबके पीछे था माली। बाहर आने पर दम में दम आया। माली को एक रुपया देकर मन्दिर से विदा ली। मन्दिर से रेल का स्टेशन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक मील से कम था। अप्रैल का महीना था, रास्ता रेतीला था, रेत एकदम गरम हो गई थी। रामदेवीबाई नंगे पांव थीं, उनके भाई रस्सी के तलेवाला किरमिच का जूता पहने थे, जो उन दिनों छः आने में मिलता था। थोड़ी ही दूर चले होंगे कि रामदेवीबाई के पांव इतनी बुरी तरह जलने लगे कि गिरने को हो गईं। भाई ने अपने जूते देने चाहे पर उन्होंने लेने से इन्कार कर दिया। आखिर यह ठहरा कि एक एक जूता बांट लिया जाय और इस पर रामदेवीबाई राजी हो गईं। इससे भी काम न चला तब रामदेवीबाई ने अपना दुपट्टा अपने पांव पर लपेटा और भाई ने अपनी अचकन उतार कर बांधी। ज्यों त्यों कर स्टेशन की ओर बढ़े। जब स्टेशन एक फर्लांग रह गया तब गाड़ी आ पहुंची और गाड़ी मिलने की कोई आशा न रही। ज्यों ही रेल के मुसाफिरों ने उनको इस तरह आते देखा, उनको दया आ गई। उन्होंने गार्ड से कहा, गाड़ी तब तक रुकी रही जबतक रामदेवीबाई और उनके भाई रेल के डिब्बे में न बैठ गये। गाड़ी के डिब्बे में बैठकर जब रामदेवीबाई ने अपना पांव खोला तब मालूम हुआ तीन छाले पड़ गये थे। भाई के पाँव में छाला नहीं पड़ा था। ग्वालियर से चलकर आगरा शहर देखा। दो तीन दिन इसमें लगे और फिर अपने गांव अतरौली पहुँच गईं।

यह बात पहले कही जा चुकी है कि रामदेवीबाई अपने बच्चों समेत अपने भाई-भावज के यहां रहतीं थीं। उनका एक भतीजा था जो उन दिनों यानी सन् १९१० में तीन बरस का था। यों कुल मिलाकर सब कुटुंब के सात आदमी थे। इनकी आर्थिक व्यवस्था भाई के हाथ में थी और घर की सब सम्हाल रामदेवीबाई के हाथ में थी। यह भी पहले कहा जा चुका है कि भाई ने जनवरी सन् १९१० में नौकरी छोड़ दी थी। एक तरह से वे समाज-सेवा के मैदान में कूद पड़े थे। भाई का घराना इतना पैसे वाला न था कि अगर कुछ भी न किया जाय तो दस-पांच बरस काम चल सके इसलिये रामदेवीबाई चिन्ता में पड़ गईं, अब क्या होगा? तीन चार बरस में रामदेवीबाई ने इतनी योग्यता हासिल कर ली थी कि वह अपने पर भरोसा कर सकें और इस योग्यता के बल पर उन्होंने न अपने भाई को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ कहा और न उनसे यह पूछा कि आगे क्या इरादा है। तीर्थ-यात्रा से लौटने के पन्द्रह दिन बाद ही रामदेवीबाई का भाई जयपुर चल दिया और अब सब बोझ उन पर आ पड़ा।

भाई के चार मकान थे। तीन किराये पर उठे हुए थे। एक में कुटुंब की रिहायश थी। रिहायशवाला मकान अधबना था। आगे का हिस्सा कच्चा और पुराना था। उसका नक्शा रामदेवीबाई के पिताजी तैयार करके छोड़ गये थे। पर उस नक्शे के मुताबिक मकान बनाने के लिये जितने धन की आवश्यकता थी वह रामदेवीबाई के पास न था। पाठकों को यह तो समझ ही लेना चाहिये कि भाई की तरफ से रामदेवीबाई को सब तरह के अधिकार हासिल थे। एक तरह से वह अपने भाई की बड़ी बहन न होकर बड़ा भाई थीं। इसलिये वह जो मुनासिब समझतीं, करतीं और कर लेतीं। उन्होंने तीनों मकान बेच डाले और उसमें से जो धन उनसे हासिल हुआ उससे रहने का मकान अपने पिताजी के नक्शे के मुताबिक खड़ा कर दिया जो आज के दिन तक मौजूद है।

रामदेवी ने अब अपने भाई के भरोसे रहना एकदम छोड़ दिया। उनकी दोनों लड़कियों की शादी हो चुकी थी। पर अब भी उन्हीं के साथ थीं। सब मिलाकर छः आदमियों का बोझ उनके सर था। घबड़ाना, शिकायत करना या किसी से मांग कर, उधार लेकर जीवन बिताना उन्हें पसन्द न था। हाथ से काम करनेवाले और पांव पर भरोसा करनेवाले कम शिकायत करते हैं। और मांगने और भीख मांगने की तो वे कभी सोच ही नहीं सकते। दोनों कुल के इन गहरे संस्कारों का यह नतीजा हुआ कि उन्होंने कुछ घोड़े खरीदे और इक्के चलाने का रोजगार शुरू कर दिया। थोड़ी सी पूंजी में आमदनी का यह सिलसिला जारी हो गया कि घर का काम बहुत अच्छी तरह चलने लगा। बाप के घराने की धाक मोहल्ले, बिरादरी और शहर में फिर से जम गई। अपने भौजाई भतीजे को कभी यह अनुभव न होने दिया कि वे यह समझें कि उसका पति और उसका बाप उनकी तरफ से बेपरवाह है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब यह समझ में नहीं आता कि यह कहना कहां तक ठीक होगा कि रामदेवीबाई बहन की हैसियत से भाई के आश्रय में थीं या योग्य बहन की हैसियत से अपने भाई का कुटुंब सम्हाल रहीं थीं। जहां तक हमें पता है उनका भाई अपने आपको अपनी बहन का काफी ऋणी समझता रहा है और आज भी वैसा समझता है।

मई सन् १० से नवम्बर सन् १० तक भाई की एक दो से ज्यादा चिट्ठियां उनको नहीं मिलीं। उन चिट्ठियों में ऐसी कोई बात न थी जिसका हाल यहां बताया जाय। हां, नवम्बर के महीने में जैसे ही दूसरे भतीजे का जन्म हुआ वैसे ही भाई की एक चिट्ठी मिली जिसमें यह लिखा हुआ था कि उन्होंने अपना जीवन समाज को अर्पण कर दिया है और अब उनसे किसी तरह की उम्मीद न उन को रखनी चाहिये और न उनकी भौजाई को। इस चिट्ठी का असर रामदेवीबाई पर क्या पड़ा यह कभी नहीं मालूम हो पाया। उसकी वजह यह रही हो कि उन्होंने तीर्थयात्रा में साथ रहकर भाई के मन को अच्छी तरह जान लिया था और मई के महीने में जब भाई जयपुर चल दिया था तब उन्होंने यह सब ताड़ लिया था जो अचानक नवम्बर में उनके सिर पर आ पड़ा। उन्होंने यह समझ कर अपना जीवन नये सिरे से ढालना शुरू कर दिया था और यह समझ लिया था कि उनके अपने और अपने पिता के परिवार की सारी जिम्मेवारी उन्हें खुद ही सम्हालनी पड़ेगी।

रामदेवीबाई के भाई के एक मित्र थे लाला गेंदनलाल जी। लाला गेंदनलाल जी के दो लड़के थे और दो लड़कियां। लड़के लड़कियों की माता का देहान्त हो चुका था। लाला गेंदनलाल जी से रामदेवीबाई के भाई की मित्रता हुई थी फतहपुर में, जहां लाला गेंदनलाल म्युनिसिपल सेक्रेटरी थे। यह मित्रता धीरे धीरे भाईचारे में बदल गई।

जैसे ही रामदेवीबाई के भाई ने समाज सेवा के मैदान में कदम रखा वैसे ही कुछ दिनों के बाद लाला गेंदनलाल जी उनसे जयपुर में आ मिले और उनके साथ काम करने लगे। लाला गेंदनलाल के दोनों लड़के अर्जुनलाल सेठी की शिक्षा समिति के छात्रालय में दाखिल हो गये। दोनों लड़कियां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सेठी जी के घर रहने लगीं और शिक्षा समिति के बालिका विद्यालय में पढ़ने लगीं। सबसे बड़े लड़के का नाम दीपचन्द, जो हिन्दुस्तानी सरकार का मजिस्ट्रेट रह कर अब रिटायर्ड हो गया और देहरादून में रहता है। दूसरे लड़के का नाम प्रीतचन्द, वह है तो फर्स्ट क्लास इन्जिनियर पर शायद कहीं कानपुर में बिजली की दुकान करता है। बड़ी लड़की का नाम जयवन्ती जो आजकल मेरठ के आस पास रहती है, छोटी लड़की का नाम गुणवन्ती था। दो तीन वर्ष हुए उसका स्वर्गवास हो चुका।

हां, तो वे चारों बच्चे जून से नवम्बर तक अपने पिता के साथ जयपुर ही थे, जहां रामदेवीबाई के भाई काम कर रहे थे। नवम्बर के महीने में जैसे ही रामदेवीबाई को अपने भाई के इरादे का पता चला वैसे ही यह भी पता चला कि उनके भाई लाला गेंदनलाल जी के साथ एक गुरुकुल खोलने के इरादे से निकल पड़े हैं। और अब उन्होंने समझ लिया कि हर तरह उन्हीं को घर की सारी जिम्मेवारी लेनी होगी। तय करना था कि न जाने कहां से उनमें हिम्मत आ गई जो और तरह न मिल पाती। पढ़ने वाले उनसे यह सबक ले सकते हैं कि क्या मर्द और क्या औरत और क्या पढ़े लिखे और क्या अपढ़ इन में राम तभी जागता है जब अपने ऊपर पड़ती है। रामदेवीबाई ने अब खुले दिल से लेन-देन, वणिज व्यापार और इक्के चलाने का काम शुरू कर दिया। घर की इतनी अच्छी व्यवस्था की जिसे देखकर पड़ौसी और मुहल्ले वाले अचरज करने लगे। कुछ ही दिनों में शहर के सभी लोग उन्हें 'गंगाराम की बेटी' के नाम से जानने लगे, क्यों कि उनके पिता गंगाराम शहर में पहले से ही मशहूर थे।

घर गृहस्थी ठीक ढंग से सुख पूर्वक चल रही थी। जनवरी सन् १९११ के शुरू में रामदेवीबाई के भाई घर आये। और रामदेवीबाई के अकेले लड़के जैनेंद्रकुमार, उन दिनों के आनन्दीलाल को अपने साथ ले गये। रामदेवीबाई ने आंखों के अन्दर आंसुओं को दबाये रख कर यह वेदना भी चुपचाप सह ली, एक शब्द भी न बोली। उन्हें बताया गया, रुड़की में एक गुरुकुल खोला जा रहा है, उनका पुत्र आनन्दीलाल वहीं उनके भाई के साथ रहेगा। उन्हें जैसा बताया उस पर उन्होंने विश्वास कर लिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और खुश खुश भाई और बेटे को विदा दी, और फिर अपने काम में वैसी ही जुट गईं मानों कुछ हुआ ही न था।

एक महीना भी न बीता था कि उनके भाई की तो नहीं, लाला गेंदनलाल की एक चिट्ठी रामदेवीबाई को मिली जिसमें लिखा था कि वह उनके भाई के साथ मुजफ्फरनगर जा रहे हैं। और वहां महामण्डल का जल्सा होगा। वहां यह तय किया जायगा कि गुरुकुल कहां और कैसे खोला जाय। उस चिट्ठी में यह भी लिखा कि जिन अपने बड़े भाई के साथ लाला गेंदनलालजी ठहरे हुए थे उनसे गुरुकुल के मामले में उनका मेल नहीं खाता इसलिये रुढ़की छोड़ रहे हैं। इस पत्र में यह तो लिखा था कि आनन्दीलाल यानी जैनेन्द्र और गुणवती यानी लाला गेंदनलाल की छोटी लड़की दोनों अच्छी तरह हैं, पर यह नहीं लिखा था कि यह दोनों या उनमें से कोई उनके साथ मुजफ्फरनगर जा रहे हैं, या नहीं। इस छोटी सी भूल के कारण रामदेवीबाई बड़ी चिंता में पड़ गईं और कुछ समझ न पाईं कि क्या करें? पाठक यह तो समझ ही लें कि उन दिनों रामदेवीबाई बहुत ही कम पढ़ी लिखी थीं। चिट्ठी वे खुद नहीं लिख सकती थीं, चिट्ठी लिखाने के लिये दूसरों को ही ढूंढना पड़ता था और रहीं उनकी भौजाई, उनके लिये तो काला अक्षर भैंस बराबर था। मतलब यह कि ननद भौजाई दोनों चिट्ठी लिखाने में दूसरों के आश्रित थीं। आश्रित थीं यह इतना बुरा न था जितना यह कि लाला गेंदनलालजी ने उनको पता भी न लिखा जिसपर वह उनसे लिख कर पूंछ सकें और आनन्दीलाल का हाल जान सकें, पर भाई पर विश्वास करने वाली रामदेवीबाई इस चिट्ठी से घबराई नहीं, अपने काम में लगी रहीं। भौजाई की उमर उन दिनों १८-१९ की रही होगी। यह, कहने के लिये तो, तीन बच्चों की मां हो चुकी थीं पर घर में कुछ इस ढंग से रहीं थीं कि कभी पांच मिनट भी बैठकर अपने पति से बातचीत न की थीं। उनके पर्दे का यह हाल था कि पर्दे में से जरूर उन्होंने अपने पति को जी भर कर देखा होगा, पर यह उनको अच्छी तरह मालूम था कि ११ बरस की उमर के बाद से उनके चेहरे पर उनके पति की नजर कभी ५-१० मिनट तो एक तरफ, दो तीन मिनट को भी नहीं पड़ी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनका विवाह आठ बरस की उमर में हो गया था। इस तरह एक दो बरस तो वह जरूर अपने पति के साथ ऐसे खेली जैसे भाई बहन खेलते हैं, और खाने पीने की चीजों के लिये ऐसे लड़ी झगड़ी जैसे भाई बहन लड़ते–झगड़ते हैं। पर जिस दिन से घूंघट शुरू हुआ उस दिन से सचमुच घूंघट २४ घंटे का घूंघट बन गया। पाठकों को यह बात भलेही अनोखी मालूम हो पर है सच और उन्हें विश्वास कर लेना चाहिये। हां, तो इस तरह से पत्नी रामदेवीबाई की भौजाई अपना दुःख किसे सुनातीं ? आनन्दीलाल भले ही उनका भानजा हो पर उन्हें तो उससे बेटे जैसी मुहब्बत थी, पर वह इतनी ना समझ थी या इतनी ज्यादा समझदार थीं कि अपनी उस मुहब्बत के नाते आनन्दीलाल के बारे में अपनी ननद से कुछ न पूंछ पाई और अपने भावों को मन में मसोस कर रह गईं। उन्हें जबरदस्ती उस ननद की नकल करनी पड़ती जिसका दिल न जाने किस तरह इतना मजबूत बन गया था, कि उन्होंने अपने विधवा पने का दु.ख भाई का सहारा लेकर पूरी तरंह काबू में कर लिया था, और अपने भाई की बेपरवाही के दुख को उसी तरह सह लेती थी, मानों उन पर कुछ बीता ही न हो। वह इस योग्य भी न थी कि यह समझ सकती कि मुसीबतें झेलते झेलते दिल पत्थर हो जाता है, फिर उस पर कितनी ही मुसीबतें क्यों न आयें वह उन्हें ऐसे ही झेल लेता है जिसे देखकर देखने वाले यह समझ ही नहीं पाते कि कोई मुसीबत झेल रहा है। जिनको मुसीबत झेलने की आदत हो जाती है उनको बड़ी से बड़ी मुसीबतों में फसे देखकर कोई तरस नहीं खाता। रामदेवीबाई की भौजाई के मनकी बात वह खुद ही जान सकती थीं कि उनकामन किस तरह काम करता था और वह अपने मन को कैसे समझा कर अपन दुख झेलती थी। वह अब इस दुनियां में नहीं है और इस लेख का लेखक इस बातमें कुछ नहीं जानता और न किसी ऐसेको जानता है जो उसे उनके दिलकी बात बता सके।

हां तो यह ननद भौजाई सब दुखों को भूल कर अपने काममें जुटी रहीं। मुहल्ले वालों, बिरादरी और शहर वालों से जहां तक कुछ मालूम हुआ वहां तक यही पता चला कि रामदेवीबाई हमेशा अपने कामों में ऐसी लगीं मिलीं जैसे उन्हें कोई दुख नहीं। रामदेवीबाई की दोनों लड़कियां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने अपने घर की हो चुकीं थीं और वह अब रामदेवीबाई के साथ रहने के लिये मजबूर न थीं। उन पर उनके सास-ससुर का कब्जा था। वे जब चाहे तब भेजते और न चाहें न भेजते। अब श्री गंगाराम का कुटुंब था रामदेवीबाई, उनकी भौजाई और एक चार बरस का भतीजा और दूसरा दो तीन महीने का भतीजा।

श्री गंगारामजी का कुटुम्ब अब भी जितना सुखी था वह काफी था। रामदेवीबाई भी उस उतने सुख पर सन्तोष किये हुए थीं। उसकी भौजाई भी काफी सुखी थी, दो बच्चे उसकी गोद में थे और वह अपने काम में लगी रहती थी।

१ मई १९११ को उनके भाई का फिर हमला हुआ और यह हमला इतने जोर का था कि रामदेवीबाई उसे बरदाश्त न कर सकीं। भाई के खिलाफ बलवा कर बैठीं। भौजाई को तो साथ देना ही था और उसने इस मौके का पूरा फायदा उठाया। यह हमला अपने ढंग का अनोखा था। इसका रूप यह था कि भाई ने रामदेवीबाई को समझाया कि ११ मई को हस्तिनापुर में गुरुकुल खुल जायगा। इसलिये उनकी यह राय है कि घर का सब सामान हस्तिनापुर पहुंचा दिया जाय। इस पर रामदेवीबाई पूछ बैठीं, वह क्या करें? उसके जवाब में उनके भाई बोले—घर का सामान तो घर की मदद करता नहीं और जिस तरह तुम काम चला रही हो उसे मैं रोकता नहीं। फिर एक तरह मैं तुमको हल्का ही कर रहा हूं। इस पर रामदेवीबाई बोलीं, हम आपकी इस योजना पर सहमत हैं, पर जब हमें अपने हाथ से ही काम करना है तो वहीं रह कर क्यों न काम करें, जहां तुम गुरुकुल खोल रहे हो। इस पर उनके भाई ने उनको समझाया कि गुरुकुल का कोई ऐसा काम न होगा और न ऐसा शायद हो सकता है जो तुम्हारे सुपुर्द किया जा सके और जहां गुरुकुल खुल रहा है, वहां एकदम जंगल है। वहां, नहीं कहा जा सकता, फौरन ही बाइयां रह सकेंगीं या बाइयों के रहने का इन्तजाम किया जा सकेगा या नहीं। इस पर रामदेवीबाई ने कहा कि यह ठीक है कि हम फौरन नहीं चलतीं लेकिन जैसे ही हमें यह पता लगा कि हम वहां रह सकती हैं हम वहीं आ पहुंचेंगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आपकी एक बात न मानेंगीं। उनके भाई ने यह तजवीज मान ली और मन में यह सोच कर मान ली कि कम से कम इस वक्त न तो रामदेवीबाई साथ चल रहीं हैं और न घर का सामान गुरुकुल भेजने में कोई अड़चन डाल रही हैं।

आखिर दूसरे दिन घर का सामान सब अलीगढ़ भिजवा दिया गया और वहां से मेरठ के रास्ते हस्तिनापुर के जंगल में जा पड़ा। इस सामान में खाट, पीढ़ा, सारे बर्तन, बक्स, तिजोरी, चांदी के बर्तन, यहां तक कि तस्वीरें तक शामिल थीं। सिर्फ उतना ही सामान घर पर रह गया जितना काम चलाने के लिए बेहद जरूरी था। इसे भी भाई की कृपा ही समझिये कि उन्होंने न मकान को छेड़ा और न उस रुपये और जेवर को छड़ा जो रामदेवीबाई और उसकी भौजाई के कब्जे में था। जहां तक पता चला है, यह जेवर भी रामदेवीबाई ने बेच डाला था और इसका रुपया यूनियन बैंक में जमा कर दिया था और यह भी पता चला है कि उस यूनियन बैंक का दिवाला निकल गया और हिसार के उग्रसेन जी वकील की मेहनत की वजह से रुपये में तीन आना उस वक्त वसूल हो पाया जब रामदेवीबाई एक महिलाश्रम खोल चुकीं थीं और यह रुपया उस आश्रम में इस तरह खर्च हुआ जिस का कोई हिसाब आश्रम के वही खातों में नहीं है। रामदेवीबाई इस रुपये से वह काम लेती थीं जिसके लिये आश्रम की कमेटी कोई रकम मंजूर न करती थी।

रामदेवीबाई अपनी बात की पक्की निकली और अच्छी तरह पता लगा कर तीन चार महीने के बाद हस्तिनापुर जा पहुंची और गुरुकुल से अलग हस्तिनापुर मन्दिर के हद के अन्दर की कोठरी में रहने लगीं। उन की भौजाई और उनके दोनों बच्चे साथ थे। यह बात न तीर्थ के इन्तजाम करने वालों को सुहाई और न भाई को पसन्द आई। एक महीने के अन्दर लाला गेंदनलाल जी, जो रामदेवीबाई के भाई के साथ हस्तिनापुर में काम करते थे अपनी दोनों लड़कियों को ले आये और हस्तिनापुर से तीन-चार मील दूर बहसूमा गांव में एक मकान लेकर रहने लगे। उसी मकान में रामदेवीबाई और उनकी भौजाई और दोनों भतीजे चले गये। थोड़े दिनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में रामदेवीबाई के मामा आ पहुंचे, वे काम तो गुरुकुल में करते, पर थोड़ी बहुत देख-भाल बहसूमा जा कर कर लेते। अब रामदेवीबाई लाला गेंदनलाल जी और अपने मामा की मदद से अपनी भौजाई और अपने दोनों भतीजे और लाला गेंदनलाल जी की दोनों लड़कियों की देख-भाल करने लगीं। बहसूमा में दो कुटुम्ब मिल कर एक कुटुम्ब की तरह रहने लगे। पाठक यह समझ लें कि बहसूमा में भी रामदेवीबाई को किसी मर्द की मदद हासिल न थी क्योंकि लाला गेंदनलाल जी और रामदेवी के मामा दोनों उन से साढ़े-तीन मील दूर हस्तिनापुर रहते थे।

थोड़े दिनों में लाला गेंदनलाल जी की बड़ी लड़की सयानी हो गई और उसका विवाह रामदेवीबाई के इन्तजाम में बहसूमा में हो गया। उस विवाह में एक ऐसी दुर्घटना हो गई कि यश के बजाय थोड़ा अपयश ही रामदेवीबाई के हाथ लगा। वह दुर्घटना यह थी कि रामदेवीबाई ने जल्दी में भीगी हुई चने की दाल तलने के लिए कड़ाही में डाल दी और इससे कड़ाही एकदम भमक उठी और आग की लौ इतनी ऊंची गई कि ऊपर ताने हुए चंदोवे में आग लग गई। इतना अच्छा हुआ कि आग फौरन काबू में आ गई और चंदोवा जलने के सिवा कोई और नुकसान नहीं हुआ।

जयन्ती विदा हो गई। रामदेवी के भाई ने रामदेवी के भतीजे को गुरुकुल में ले लिया। छोटे भतीजे की दो-एक महीने बाद मौत हो गई। अब कुटुम्ब में रह गई रामदेवी और लाला गेंदनलाल जी की छोटी लड़की और रामदेवी की भौजाई। रामदेवीबाई की अब हिम्मत टूट गई और जिस मकान में वह हंस हंस कर काम कर रही थी, वही मकान उन्हें काटने लगा। उन्होंने अब यह खूब समझ लिया कि अब उन को उन के भाई से कोई मदद मिलने वाली नहीं। इसलिये उन्होंने जल्दी ही बम्बई, सेठ माणिकचन्द जी की लड़की मगनबहन के आश्रम में जाकर तालीम हासिल करने की बात तय कर ली और तीनों जल्दी ही वहां पहुंच गईं। उन्होंने जल्दी ही अपने आप को काफी योग्य बना लिया और अपनी भौजाई को भी पढ़ा लिखा लिया। यहां तक कि उनकी भौजाई इस योग्य हो गई कि वह अध्यापिका का काम कर सकती थीं। बम्बई छोड़ कर वह इंदौर पहुंची

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और सेठ हुकुमचन्द की धर्मपत्नी कंचनबाई की महिला संस्था में अधिष्ठात्री का काम करने लगीं। वहाँ उन को शायद १५० रुपये वेतन मिलता था और उनकी भौजाई को क्या मिलता था, यह ठीक नहीं मालूम। लाला गेंदनलालजी की छोटी लड़की गुणवती उनके साथ इन्दौर थी। उसका खर्चा लाला गेंदनलालजी भेजा करते थे।

कुछ दिनों में उन्होंने इन्दौर की संस्था छोड़ दी और दिल्ली में आकर एक मकान किराये पर लेकर रहने लगीं। यह मकान भाई मोतीलालजी की मिल्कियत थी। मोतीलालजी एक त्यागी आदमी थे। मामूली पैसे वाले थे। उनके आगे-पीछे कोई न था। वे अपने पैसे से विद्यार्थियों को छात्र-वृत्ति देते थे और छिपे छिपे देश-भक्ति के नाते बम फेंकने वालों की भी मदद करते थे। शुरू में उनको मन्दिरों से काफी रुचि थी इसलिये वह मकान जिसमें रामदेवीबाई जाकर किराये से रही थीं, भाई मोतीलालजी ने मन्दिर के लिये दे डाला था, पीछे उनकी रुचि बदली और वह यह चाहते थे कि उस मकान का मन्दिर न बनकर धर्मशाला बने, पर बिरादरी मन्दिर बनाने पर तुली हुई थी। लिखा-पढ़ी कुछ नहीं थी। अगर मुकदमा चलता तो हो सकता है बिरादरी जीत जाती और फिर वह मकान मन्दिर का ही रूप ले लेता, इसलिये मोतीलालजी यह चाहते थे कि उस मकान पर पूरा कब्जा कर लें और बिरादरी के हाथ से निकाल लें। यह सोचकर उन्होंने रामदेवीबाई से यह कहा कि वह उन्हें एक किरायानामा लिख दें। किराया बहुत थोड़ा था और वह सिर्फ नाम के लिये था। क्योंकि रामदेवीबाई ने वह मकान अपने लिये नहीं लिया था, एक आश्रम खोलने के लिये लिया था, पर इस नाम-मात्र के किराये का किरायानामा वह लिखने को तैयार न थीं। उसकी वजह सिर्फ यह थी कि वह जिस घराने में पैदा हुई थीं उस घराने में किरायानामा लिखने-लिखाने का रिवाज न था। उनके बाप के खुद तीन तीन चार चार मकान थे और किराये पर उठाने का काम वह खुद करती थी और कभी किसी से किरायानामग नहीं लिखाती थी। बस यही संस्कार थे जो उन्हें किरायानामा लिख देने के लिये तैयार न होने देते थे। भाई अजितप्रसादजी जब उनको किरायानामा लिखने के लिये समझाने लगे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि यह मामूली बात है, लखपति और करोड़पति भी किरायानामा लिखते हैं, तो यह सुनकर वह कोई दलील तो न दे सकीं, और रो पड़ीं। कहने लगीं, कि क्या हमारा इतना भी एतबार नहीं। आखिर अजितप्रसादजी ने यही मुनासिब समझा कि आगे उनसे कुछ न कहा जाय और वह उठकर चल दिये। इस किराये नामे के बारे में भाई मोतीलालजी ने रामदेवीबाई के भाई से भी मदद लेनी चाही पर वह असफल रहे। किरायानामा न लिखा गया।

रामदेवी के भाई हस्तिनापुर गुरुकुल के अधिष्ठाता पद से अलग हो चुके थे पर संचालक के नाते रहते वहीं थे। गुरुकुल में और भी तरह तरह के झगड़े खड़े हो गये थे। उनकी खबर रामदेवीबाई को मिलती रहती थी। वह उन खबरों से कभी विचलित नहीं होती थीं। उनको मालूम था कि उनका भाई अब राजनीति के मैदान में आ चुका है और वह अब इसके लिये तैयार थीं कि एक न एक दिन उनका भाई इसी तरह जेल में बंद मिलेगा जिस तरह जयपुर के अर्जुनलाल सेठी। अर्जुनलाल सेठी उन दिनों वेलोर जेल में नजर-बन्द थे। उन्होंने एक सत्याग्रह कर रखा था। और जब उनकी मदद के लिये रामदेवीबाई के भाई वेलोर पहुँचे तब उन्हें पक्का विश्वास हो गया कि वह दिन दूर नहीं है जब वह अपने भाई को हथकड़ियाँ पहने और बेड़ियाँ खन खनाते देखेंगी।

पहली लड़ाई अभी जोरों पर थी। खतम होने की कोई सूरत नजर न आ रही थी। सन् १८ का चौथाई खतम हो चुका था, जब रामदेवीबाई ने दिल्ली में पहाड़ीधीरज पर महिला-आश्रम की स्थापना की। इसी सन् १८ के जुलाई महीने में उनका भाई बिजनौर में पकड़ा गया और वह उनसे मिलने के लिये दौड़ी दौड़ी बिजनौर पहुँचीं। एक बार तो उनके भाई ने उनसे मिलने से इन्कार कर दिया क्योंकि उसे मालूम था कि रामदेवीबाई का दिल इतना जोरदार न था कि वह अपने भाई को हथकड़ियों और बेड़ियों में देख सकतीं। सन् '२१ के असहयोग आन्दोलन की तरह उन दिनों राजनैतिक कैदियों को कोई सुविधा प्राप्त न थी। मामूली डाकुओं के साथ जो वर्ताव होता था उसी तरह उस हालत में, जब तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्हें सजा भी नहीं हुई होती थी, उनके पाँव में डण्डा-बेड़ियां डाली जाती थीं। और रातको कितने ही कैदी एक साथ एक जंजीर में बांध दिये जाते थे। रामदेवी का भाई पंजाब मार्शल लॉ में पकड़ा गया था और उसके साथ भी मामूली डकैतों जैसा बर्ताव किया गया था। इसी वास्ते उसने रामदेवीबाई से मिलने से इन्कार कर दिया। जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट के कहने-सुनने पर वह रामदेवीबाई से मिला पर उसका अन्दाजा गलत निकला। रामदेवीबाई के चेहरे पर न कोई घबराहट थी, न कोई उदासी। आँख भीगने की तो कोई बात ही न थी। ऐसा मालूम होता है कि रामदेवीबाई ने अपने भाई के लिये कुछ करने की कोई योजना तैयार कर ली थी और इसी वजह से उनका दिल पक्का हो गया था और पक्के दिल के रास्ते में उदासी और घबराहट नहीं आया करती। मिलने के दो-तीन दिन बाद वह लाट साहब से मिलीं, पर लाट साहब ने यह कह कर तसल्ली दे दी कि बहुत जल्दी शाही इश्तिहार निकलने वाला है और उनके भाई जल्दी ही छोड़ दिये जायेंगे।

रामदेवीबाई जब इन्दौर की संस्था छोड़कर दिल्ली आईं तब उनके पास कुछ रकम थी। कुछ ननद भौजाई की तनखाह की, कुछ यूनियन बैंक की जो जेवर बेचकर जमा की गई थी। इन्दौर की संस्था छोड़ने की बात यों सूझी कि वह अेक अलग संस्था दिल्ली में खोलना चाहती थीं। दिल्ली में वैसी संस्था की जरूरत थी।

रामदेवीबाई जब दिल्ली आईं तब उनका लड़का जैनेन्द्र ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर में पढ़ता था। उनकी दोनों लड़कियाँ अपनी अपनी ससुराल में थीं और दोनों दो-दो तीन-तीन बच्चों की माँ हो चुकी थीं। उनकी दोनों लड़कियों की तालीम मामूली थी। बड़ी लड़की छोटी लड़की से कुछ ज्यादह पढ़ी-लिखी थी। दोनों लड़कियाँ अलीगढ़ जिले में ब्याही थीं। बड़ी लड़की अलीगढ़ जिला छोड़ दिल्ली आ बसी थी।

महिलाश्रम की स्थापना होने से पहले दिल्ली की महिलाओं की अेक सभा बनाई गई; जिसकी अध्यक्षा थी, सुशीला देवी रायबहादुर सुलतानसिंह। यों तो महिलासभा की सभी स्त्रियों ने रामदेवीजी के साथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बड़ी लगन से काम किया, पर तीन बाइयाँ तो हर तरह उनकी मदद करती थीं। वह तीन थीं, सुशीलादेवी सुल्तानसिंह, मुखनीदेवी मीरोमल और रतनदेवी। इन तीन देवियों की अगर उनको पूरी मदद न होती, तो आश्रम की स्थापना के तीन बरस बाद जो झगड़े शुरू हुए उनमें आश्रम खतम हो गया होता। ये तीनों देवियाँ बड़ी हिम्मत से रामदेवीबाई के साथ आखरी दमतक काम करती रहीं।

महिलाश्रम की स्थापना सन् १९१८ में इसी महिला सभा ने की। अगर यह महिला सभा चाहती तो आश्रम को अच्छी तरह चला सकती थी। अगर उसने यह काम हर तरह अपने हाथ में रखा होता तो महिलाश्रम की शकल कोई दूसरी होती और उसने बहुत जल्द अपना निज का मकान बना लिया होता और महिलाओं में बड़ी जागृति कर दी होती, पर वैसा होना न बदा था। आश्रम की स्थापना के साथ साथ उसकी मदद करने के लिये अेक पुरुष कमेटी बनानी पड़ी और उस पुरुष कमेटी और महिला कमेटी में बहुत जल्द मतभेद खड़ा हो गया। रामदेवीबाई यह नहीं चाहती थीं कि पुरुष कमेटी आश्रम के अन्दरूनी मामलों में दखल दे और महिला सभा भी इसी खयाल की थी। अगर अैसा न होता तो आश्रम सत्रह बरस न चल पाता। अेक बार पुरुष कमेटी ने रामदेवीबाई की गैरहाजरी में, जब वह आश्रम के प्रचार के लिये बाहर गई हुई थीं, आश्रम में ताला लगा दिया जिसका विस्तार से वर्णन हम आगे कहीं करेंगे। पर रामदेवी बाई जैसे ही लौटीं उन्होंने ताला तोड़ दिया और आश्रम वैसे ही चलने लगा जैसे चल रहा था। उनकी यह हिम्मत देख पुरुष कमेटी में फूट पड़ गई। पुरुष कमेटी के दो दल हो गये। अेक दल चाहता था, आश्रम बिलकुल तोड़ दिया जाय या सारा इन्तजाम पुरुष कमेटी के हाथ आ जाय, दूसरा दल चाहता था, आश्रम के अन्दरूनी मामले में पुरुष कमेटी कोई दखल न दे, संस्था का सारा काम महिला कमेटी संभाले। पुरुष कमेटी का काम हो, आश्रमपर बाहरी कठिनाई आनेपर उसकी मदद करना।

पुरुष कमेटी और महिला कमेटी में मनमुटाव के कारण क्या थे? इनको जान लेने से हमारे पढ़नेवाले जान लेंगे कि रामदेवीबाई कितनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिम्मत की महिला थीं और वह दिल्ली की महिलाओं को क्या बनाना चाहती थीं ? इस बात के मानने से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह दिल्ली की महिलाओं से हिम्मत पातीं और उसी हिम्मत को दुगुनी चौगुनी करके उन्हीं में बाँट देतीं। रामदेवीबाई, या दिल्ली की महिलायें इन दो में से कोई कमजोर होता तो आश्रम एक दिन न चल पाता। रामदेवीबाई आश्रम को संभालती थीं; यह मामूली काम न था। दिल्ली की महिलायें उस काम को नहीं कर सकती थीं। रामदेवीबाई आश्रम चलाने के लिए आश्रम के अन्दरूनी मामले में पुरुष कमेटी के किसी आदमी का दखल नहीं चाहती थीं। ऐसा करने से पुरुष कमेटी एक बेकार-सी चीज बन जाती थी। वह या तो मुनीम रह जाती थी या मामूली दफ्तर जो या तो आश्रम की संचालिका रामदेवीबाई के इशारे पर काम करे या महिला सभा की अध्यक्षा के तावे रहे। यह पुरुष कमेटी को कब बरदाश्त हो सकता था, इसलिये पुरुष कमेटी ने रामदेवीबाई पर तरह तरह के दोषारोपण शुरू कर दिये। महिला सभा अपने आप में कोई चीज न थी, न उसका कोई खास काम था और न उसके पास फंड थे और न वह अपने लिये कोई ज्यादा धन जमा कर सकती थी। महिला सभा के हाथ से अगर आश्रम अलग कर दिया जाय तो महिला सभा कुछ न रह जाती। महिला सभा के काम का केन्द्र आश्रम था और आश्रम सब तरह रामदेवी-बाई के हाथ में था। वह उसकी संचालिका ही नहीं संस्थापिका भी थीं। जितनी छात्रायें उसमें बाहर से आती थीं उन छात्राओं के रिश्तेदार, इतना महिला सभा पर भरोसा नहीं करते थे जितना रामदेवीबाई पर। वह रामदेवीबाई की निजी जिम्मेवारी पर ही अपने बच्चों को आश्रम के सुपुर्द करते थे।

आश्रम का नाम महिलाश्रम जानबूझकर रखा गया था। उसमें सभी उम्र की छात्रायें थीं। सभी तरह की थीं, यानी कुमारी, सधवा, विधवा, इनमें से विधवाओं की जिम्मेबारी बेहद मुश्किल थी। उन दिनों समाज का यह हाल था कि वह अपनी कुमारी लड़कियों और सधवा बहु-बेटियों को आश्रम में भेजते नहीं झिझकती थी, पर विधवाओं को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी हालत में किसी दूसरे के सुपुर्द करना ठीक नहीं समझती थी। आश्रम का नाम महिलाश्रम होते हुए भी आश्रम विधवाओं की मदद ज्यादा करना चाहता था। विधवाओं के लाने का काम रामदेवीबाई के सिवा कोई दूसरा नहीं कर सकता था। रामदेवीबाई विधवाओं को आश्रम में लाकर उनकी जिम्मेवारी किसी ऐसे आदमी के सुपुर्द नहीं कर सकती थीं जिन्हें वह खूब अच्छी तरह न जानती हों, जिन पर उन्हें पक्का भरोसा न हो और जिन पर उनका हर तरह जोर न हो। इन शर्तों को पूरा करने के लिये वह इसके सिवा क्या करती कि उन्होंने अपनी दोनों लड़कियों को आश्रम में रखकर विधवाओं को उनके सुपुर्द किया। उनकी अपनी लड़कियों का आश्रम में काम करना उस मन-मुटाव के कारणों में से एक था जो पुरुष और महिला कमेटियों के बीच हो गये। पुरुष कमेटी के इल्जामों में से एक इल्जाम था कि वह आश्रम क्या चलाती हैं, अपनी लड़कियों को पालती हैं।

रामदेवीबाई इस इल्जाम को ऐसे पी जाती जैसे कोई रेगिस्तान नदी को। पुरुष कमेटी का यह इल्जाम कहाँ तक ठीक था इसको महिलायें खूब समझती थीं और महिला सभा की जिम्मेवार महिलायें आश्रम में रह रहकर छोटी से छोटी बात को जानती थीं, जान सकती थीं और जान लेती थीं। रामदेवीबाई की लड़कियों का काम उनकी आंखों के सामने था। वह यह खूब समझती थीं कि उन लड़कियों से सस्ती और पूरी तरह जिम्मेवारी समझनेवाली दूसरी अध्यापिकायें नहीं मिल सकतीं। यह ठीक है, इस वजह से महिलाश्रम की पढ़ाई का क्रम ऊँचा न हो पाया, पर आश्रम को बनाये रखने के लिये उतनी ऊँचे क्रम की जरूरत न थी जितनी विधवाओं के देख-भाल की।

रामदेवीबाई शिक्षा के ऊँचे क्रम की तरफ से बेपर्वाह न थीं, वह पुरुष अध्यापकों को आश्रम में बुलातीं, पर उनके पास वह अपनी लड़कियों को ही पढ़ने के लिये भेजतीं, छोटी उम्रकी कुमारी लड़कियाँ भी उनसे पाठ ले सकती थीं पर विधवाओं के पढ़ाने का काम उनकी लड़कियाँ करती थीं या इसी तरह की और जिम्मेदार बाइयाँ, या कभी कभी फुरसत हुई तो वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खुद कर लेती थीं। अपनी लड़कियों को अध्यापक रख कर पढ़ाना पुरुष-कमेटी के नाराज होने का दूसरा कारण था।

रामदेवीबाई का विधवा विवाह के बारे में क्या विचार था उसे यहाँ थोड़ा समझ लेना चाहिये। उसको समझे बिना रामदेवीबाई का जीवन समझ में नहीं आ सकता और हमारे पढ़नेवालों को यह मान लेना चाहिये कि किसी और की अपेक्षा, हम ज्यादा प्रमाण हैं। हमने उनको बहुत पास से जाना है।

हिन्दुस्तान में जो जात दुजन्मी मानी जाती है जैसे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वह सब दस्सों बीसों में बंटी हैं। बीसे वह जिन में विधवा विवाह जारी नहीं, दस्से वह जिनमें विधवा विवाह का रिवाज है। रामदेवीबाई दस्सों बीसों में कोई भेद न करती थीं। यह इस बात का सबूत है कि वह विधवा विवाह को बुरा न समझती थीं। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी ने जब विधवा विवाह की आवाज उठाई तब समाज के एक हिस्से ने ब्रह्मचारीजी का बाईकाट किया। रामदेवीबाई ने जब वह दिल्ली आये उनका स्वागत किया, और मुखनीदेवी, जो महिला सभा की मेंबर थीं उनके यहां ब्रह्मचारीजी का आहार हुआ। रामदेवीबाई खुद ब्रह्मचारीजी से मिलने पहुँची, उनके विचार अच्छी तरह सुने, पर अपनी राय न दी। वह इस खयाल की थीं कि विधवा विवाह प्रचार की चीज नहीं, सह लेने की चीज है। उनका खयाल था कि विधवा विवाह समाज के लिये कितना ही उपयोगी क्यों न हो, समाज को अैसी विधवाओं की बरसों जरूरत बनी रहेगी जो विवाह की झंझट में न फँसकर महिलाओं के उठाने के काम में लगें। रामदेवीबाई का कहना था कि कुमारी लड़कियों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह आजन्म शादी न करेंगी क्योंकि उनके खूनमें इस तरह के खयाल को जगह नहीं है, उनके लिये समाज ने कोई व्यवस्था नहीं की। बालविधवाएँ, फिर वह किसी उम्र की क्यों न हों, उनके खूनमें विवाह न करने का खयाल रहता है और समाज ने इस तरह की व्यवस्था दे रखी है कि विधवाओं को विवाह नहीं करना चाहिये। इसलिये उन विधवाओंमें से अेक-दो फीसदी अैसी निकल सकती हैं जो शादी करने की बात न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोचें और अपना जीवन समाज सेवामें लगावें। यह इस बात का सबूत है कि रामदेवीबाई विधवा विवाह को बुरा न समझते हुए भी यह हर्गिज न चाहती थीं कि उनके आश्रम की विधवायें विवाह की बात सोचें या अैसे सम्पर्क में आयें जो उन में विवाह की भावनाएँ जाग्रत कर दे। इसलिये उन्होंने खुद ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी की बातें सुनी पर अपने यहाँ की विधवाओं तक उनकी पहुँच न होने दी।

ऊपर की बात में सचाई है तभी तो उनकी पढ़ाई तीन बेवायें आज भी समाज में पवित्र जीवन बिताती हुई काम कर रही हैं। आश्रम टूटा सन् ३५ में। उन विधवाओं की उमर आश्रम छोड़ते वक्त खासी जवान थी और जिस आजादी के साथ उन्हें आश्रम छोड़कर रहना पड़ा उस आजादी में यह बिलकुल संभव था कि वह विवाह की तरफ झुक जातीं पर उन्होंने वैसा नहीं किया। वह अपने पैरोंपर खड़ी हुईं और अपनी योग्यता के अनुसार आजतक समाज सेवा में लगी हुई हैं। हाँ आश्रम की अेक दो विधवाएँ अैसी भी हैं जो विवाहित जीवन बिता रही हैं पर यह तो अपवाद के रूप में नियम की सिद्धि में सहायक है और फिर रामदेवी बाई बिधवा विवाह के खिलाफ कहाँ थीं और फिर आश्रम की जिन अेक दो विधवाओं ने विवाह किया उनमें समाज के अेक हिस्से ने हाथ बटाया। उन विधवाओं का जीवन आज अेक दफे की व्याही सधवा से किसी तरह बुरा नहीं है।

रामदेवीबाई के बारे में हमने इस बात को इसलिये लिखा कि और विधवा आश्रमों की तरह यह महिलाश्रम भी इन बातों में बदनाम था और इस बदनामी में भी पुरुष कमेटी के एक दो मेंबरों का हाथ था। इसका नतीजा यह हुआ कि देवबन्दी तीन भूत, यानी बाबू सूरजभानजी, पंडित जुगलकिशोरजी और ज्योतिप्रसादजी इस खयाल के हो गये कि महिलाश्रम इस बुराई से नहीं बच सकता। एक बार ज्योतिप्रसादजी ने खद हम से रामदेवीबाई के दिल्ली महिलाश्रम के बारे में कई हलकी बातें कही थीं; जिनको हमने चुपचाप सुन लिया था और जिनकी पूँछताछ फौरन आकर रामदेवीबाई से की थी। मालूम हुआ उन हलकी बातों में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाम को सचाई न थी, यह भी मालूम हुआ कि पुरुष कमेटी के किस मेंबर की कृपा से इस तरह की हलकी बातें घर घर फैली हैं।

पुरुष कमेटी मनमुटाव के कारण ऐसे काम कर बैठती थी जिसके नतीजे से वह खुद न बच सकती थी, पर गुस्से में जिस तरह आदमी अपने बर्तन फोड़ डालता है, अपनी घड़ी तोड़ डालता है, अपना सर पीट लेता है और यह नहीं समझता कि वह बर्तन, घड़ी और सर उसी का है; उसी तरह पुरुष कमेटी महिलाश्रम की कमेटी बने रहते भी इस तरह के काम कर जाती थी, जिस से वह खुद बदनाम होने से नहीं बच सकती थी।

इसी सिलसिले में एक घटना बड़े मार्के की है। रामदेवीबाई के लड़के जैनेन्द्रकुमारजी की शादी हो चुकी थी। जो लड़की जैनेन्द्रकुमार को ब्याही थी उसका नाम है भगवती और जिन दिनों की हम बात कह रहे हैं उन दिनों भगवती की उम्र रही होगी सत्रह वर्ष की। हाँ, तो यह भगवती और जैनेन्द्र की बहन की लड़की ज्ञान, जो भगवती की ही उम्र की थी, दोनों जैनेन्द्रकुमार के मामा के साथ जमना नहाने गईं। जैनेन्द्रकुमार के मामा उन दोनों को तैरना सिखाना चाहते थे। जैनेन्द्र साथ में था। अगस्त का महीना था। जमना में पानी खूब था। जिस घाट पर भगवती और ज्ञान को नहलाया गया उस घाट पर बड़ी बेतुकी सीढ़ियाँ थीं। जैसे ही यह दोनों लड़की पानी में गईं कि दोनों डूबने लगीं। भगवती को तो जैनेन्द्र के मामाने संभाला और ज्ञान यानी जैनेन्द्रकुमार की भानजी वह गई। इतना अच्छा हुआ कि वह घबराई नहीं और बिलकुल तैरना न जानते हुए उसने अपने हाथ पानी से ऊपर न आने दिये इसलिये वह बहती गई, डूबी नहीं। किनारे पर अपने आप लग नहीं सकती थी। जैनेन्द्र के मामाने जैनेन्द्र को फौरन हुक्म दिया कि वह कूदकर अपनी भानजी को पकड़ कर लायें। जैनेन्द्र अच्छा तैराक है। वह कूदा और अपना एक हाथ अपनी भानजी की बगल में डालकर उसे किनारे पर ले आया। न जाने कब, कैसे कहाँ से, पुरुष कमेटी का कोई मेम्बर, या उस मेम्बर का कोई रिश्तेदार जमना के किनारे खड़ा यह सब मामला देख रहा था। यह बात पुरुष कमेटी तक पहुँच गई। अब इस बात को लेकर कमेटी ने एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तूमार खड़ा कर दिया। आश्रम को बदनाम इस तरह किया गया कि रामदेवीबाई का लड़का जैनन्द्र आश्रम की विधवाओं को (अब जरा हमारे पढ़नेवाले सोचें कि किस तरह सुई का फावड़ा बनता है) तैरना सिखाने ले जाता है और उनको बगल में दाब दाबकर तैरता है। इस बात को लेकर पूंछ ताछ शुरू हुई और जब महिला कमेटी को सचाई का पता लगा तव उसे और ज्यादा पुरुष कमेटी से घृणा हो गई।

इसी तरह का एक और मामला उठ खड़ा हुआ। उसमें सचाई का अंश बहुत ज्यादा था। उसको लेकर पुरुष कमेटी ने जो बात खड़ी की वह भी एकदम झूंठ थी। वह मामला था कि आश्रम की एक पन्द्रह सोलह बरस की बाल-विधवा ने किसी को आश्रम से लिख लिख कर प्रेम-पत्र भेजना शुरू कर दिये। वह पत्र, करीब करीब सब, न जाने किस तरह, किसी के हाथ लग गये। इतना अच्छा था कि वह प्रेम-पत्र एकतर्फा थे। वह सबके सब यह साफ गवाही दे रहे थे कि जिसको यह प्रेमपत्र लिखे जा रहे हैं, न उसे उससे प्रेम है, और न उसने किसी पत्र का जवाब दिया है। हम जो बात लिख रहे हैं उसे हम पूरी जिम्मेदारी और जानकारी के साथ लिख रहे हैं। इस मामले में खास बात यह हुई कि जिसको वह प्रेमपत्र लिखे गये, उस तक वह जरूर पहुँचे। वह एक कर्तव्यशील और जिम्मेदार आदमी था। उसने उन सब पत्रों का हाल हमारे पास एक बंद लिफाफे में इलाहाबाद भेज दिया। हम उन दिनों छपनचक पर पंडित सुंदरलालजी के पास ठहरे हुए थे। होनहार की बात जिस दिन वह पत्र हमारे पास पहुँचा उस दिन रामदेवीबाई हमारे पास मौजूद थीं। बंद लिफाफा हमने ज्यों का त्यों पंडित सुंदरलालजी को थमा दिया। रातका वक्त था। हमारी ऐनक हमारे पास न थी, हमने पंडितजी से उसे पढ़नेको कहा। जैसे ही वह पत्र पढ़ा गया रामदेवीबाई घबरा गईं और नाराज हो गईं। हमने और पंडितजीने रामदेवीबाई को समझाया कि इस में न नाराज होने की बात है, न बिगड़ने को। यह आश्रम की खुश किस्मती है और आप के लिये भलाई की बात है कि जिस आदमी को यह प्रेम-पत्र लिखे गये हैं वह काफी समझदार है, अपने कर्तव्यको जानता है, आपकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिम्मेदारियोंको समझता है, वह कोई कदम हम से बिना पूछे उठाना नहीं चाहता। तब न डरकी बात है, न बिगड़ने की। पर हमारी इन बातोंका कोई असर रामदेवीबाई पर न हुआ। वह पहली गाड़ी से उस पत्र को लेकर दिल्ली पहुँचीं। वह जिम्मेदार आदमी उनका अपना ही आदमी था और जिस तरह उन्होंने उसकी खबर ली वह दूसरे का काम नहीं हो सकता था। उन्हें आश्रम से प्यारी कोई दूसरी चीज न थी और आश्रम से मतलब आश्रम की वह इज्जत, वह धाक, जिस के ऊपर वह जीती थी और जिस की वजह से तमाम महिलाओं में उनकी इज्जत थी। वह मामला महिला कमेटी के सामने आया और महिलाओं में से हर एक ने अलग अलग अपने अपने तरीके से उस लड़की से पूँछताछ की। मगर सब एक ही नतीजे पर पहुँचीं, दोष है तो लड़की का है और कुछ उसकी उम्रका। महिला कमेटी की राय न होते हुए भी रामदेवीबाई ने उस लड़की को अपने घर पहुँचा दिया। आश्रम में नहीं रखा। अब वह बेवा लड़की बहुत खुश है, समाज ने उसकी शादी कर दी और वह दो तीन बच्चों की माँ है। नाम हम जानबूझकर नहीं दे रहे। जिन जिनको नाम जानना चाहिये वह पहले से जानते हैं। यह मामला बेशक संगीन मामला था। पर पुरुष कमेटी ने इसका जो रूप देकर महिला कमेटी के पास भेजा उस में सचाई का अंश बहुत कम था। महिला कमेटी ने इस मामले को इतना बड़ा नहीं समझा जिस की वजह से कोई ऐसी कार्रवाई की जाय कि कमेटी के जो कायदे चले आ रहे हैं, उन में कोई बदलाव किया जाय।

इसी सिलसिले में यह कह देना जरूरी है कि एक बिलकुल सच्चा और बहुत संगीन मामला रामदेवीबाई की मौत से दो बरस पहले हुआ, जिस से वह इतनी दुखी हुई कि उन्हें आश्रम से, आश्रम की कई लड़कियों से और एक नौकर से इतनी घृणा हो गई कि अब वह इस फिक्र में थीं कि आश्रम बंद किया जाय। मजे की बात यह है कि इस सच्ची बात को समाज इस तरह पी गई, कि न पुरुष कमेटी उसे कभी जबानपर लाई न महिला कमेटी। उस मामलेका जिक्र विस्तार के साथ कुछ आगे किया जायेगा,, यहाँ वह ठीक न रहेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरुष कमेटी और महिला कमेटी में मन-मुटाव के कारण दो तरह के थे। अेक यह कि रामदेवीवाई आश्रम को अपनी मिल्कियत समझती हैं, दूसरा यह कि उन्होंने महिला कमेटी को वहका रखा है और मनमाना खर्च करती हैं। इल्जाम दोनों करीव करीव ठीक हैं पर यह इल्जाम अैसे हैं जो थोड़े वहुत हर संस्था के संचालक या संचालिका पर लगाये जा सकते हैं। शुरू शुरू में कोई संस्था अेक आदमी की हाथ की हुए वगैर पूरी तरक्की नहीं कर सकती। कांग्रेस जैसी वड़ी संस्था के वारे में भी गान्धीजी के जीवित रहते वहुत लोगों का यही कहना था कि कांग्रेस माने गान्धी और गान्धी माने कांग्रेस। रामदेवीबाई आश्रम की सर्वेसर्वा रहते कौड़ी कौड़ी का हिसाव रखती थीं। हिसाब हर साल आडीटर जाँचता था। ऑडीटर की रिपोर्ट हमने पढ़ी है। उस रिपोर्ट में हिसाव रखने की तारीफ तो थी, पर अेक तारीफ यह थी कि वहाँ सारा हिसाव रखने का काम अेक लड़की करती थी। आँडीटर का यह कहना था कि उसके जीवन में उसने कभी किसी लड़की को इस तरह वाकायदा हिसाव रखते नहीं देखा।

हिसाव सम्वन्धी दो अेक वात लिख देना जरूरी है। रामदेवीवाई जव भी चन्दा करने जातीं उनके साथ आश्रम की दो अेक लड़कियाँ जरूर रहतीं। रसीद लिखने का काम आम तौर से लड़कियाँ करतीं। रसीदपर दस्तखत रामदेवीवाई करतीं। महिलाश्रम को हमने इतने पास से देखा था कि हम अेक अेक लड़की के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित थे। यह हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि अेक लड़की को छोड़कर आश्रम में कभी कोई लड़की अैसी नहीं आई जो हाथ की सच्ची न हो। सैकड़ों रुपये लड़कियों के हाथ से निकलते थे, कभी कोई धोखा नहीं हुआ। अेक बार अैसा हुआ कि महिला कमेटी के नाम या शायद रामदेवीबाई के नाम अेक पत्र आया जिसमें यह लिखा था कि उन्होंने जो दस रुपये दिये थे उसकी कोई रसीद आजतक नहीं मिली। पत्र में जो दातारों की सूची निकली है उसमें उनका नाम नहीं है। यह पत्र किसी तरह पुरुष कमेटी के हाथ लग गया। इसको लेकर अेक बड़ा बखेड़ा शुरू होगया। यह मामला हम तक पहुँचा। हमने कमेटी की तरफ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से उस आदमी को पत्र लिखवाया कि वह यह बतायें कि दस रुपये कब और कहां दिये ? वहाँ से चिट्ठी का जवाब आगया। उस चिट्ठी में जो जगह और तारीख दी हुई थी उस तारीख और जगह की रसीदें निकाल कर देखी गईं। उसी सिलसिले में और कागज देखे गये। उन कागजों में यह लिखा हुआ मिला, कि उस दिन के हिसाब में दस रुपये बढ़े। और उन दस रुपयों की गुमनाम रसीद काट दी गई। मामला साफ होगया और शिकायत करनेवाले सज्जन को दस रुपये की डुप्लीकैट रसीद भेज दी गई। पर न उन सज्जन को तसल्ली हुई और न पुरुष कमेटीने यह कहना छोड़ा कि दस रुपये का ग़बन हुआ।

इसी तरह का दूसरा किस्सा और है। एक मर्तबा रामदेवीबाई कलकत्ते गई हुई थीं। होनहार, हम भी वहाँ मौजूद थे। हमारे साथ हमारा सेक्रेटरी कालीचरण मौजूद था। अेक दिन रामदेवीबाई की साथकी लड़कियाँ कहीं बाहर गई हुई थीं और रामदेवीबाई एक जगह चन्दा करने वाली थीं, उनको किसी अैसे आदमी की जरूरत थी जो पैसा जमा कर सके और रसीदें काट सके, हमने कालीचरण को उनके सुपुर्द कर दिया। उसने उनका सब काम कर दिया। जब रामदेवीबाई कलकत्ता से चंदा इकट्ठा कर के दिल्ली पहुँची और उनकी रसीदों की जाँच पुरुष कमेटी ने की तो अस्सी रुपये की भूल निकाली। भूल निकालने के माने यह कि अस्सी रुपया रामदेवीबाई खागईं। मनमुटाव के कारण पुरुष कमेटी जो जी में आता कह बैठती थी। यह मामला पहले रामदेवीबाई के सामने आया। उन्होंने देखते ही बता दिया कि यह पुरुष कमेटी के समझ की भूल है, इसमें कोई रुपया कम नहीं है। बात कुछ न थी। कालीचरण हिन्दी में अेक को अैसा लिखता था जो अंग्रेजी का नौ पढ़ा जाता था लेकिन वह हिन्दी में नौ भी इस तरह लिखता था जो उस तरह के लिखने को न जानता हो, तो उसे हिन्दी का एक पढ़ ले। एक रसीद पर अंकों में जो दस की रकम लिखी गई थी उसके एक के अंक को पुरुष कमेटी ने नौ का अंक समझ लिया। वह रकम नब्बे हिसाब में ले ली। अस्सी रुपये अपने आप कम हो गये। अब पुरुष कमेटी को राम-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवीबाई ने कई तरह समझाया पर पुरुष कमेटी न मानी। रामदेवीबाई की एक दलील ऐसी थी जिसका कोई काट नहीं था, दूसरी दलील ऐसी थी जिसे किसी संस्था की कार्यकारिणी कमेटी संस्था के संचालक के हैसियत से जरूर मान लेती। फिर जब वह रसीद कटी हुई है और अगर कोई शक है तो दातार से लिखकर पूछा जा सकता है। पर इन बातों की पर्वाह वह करे जिसे न्याय करना हो। जिसे बदनाम करना हो वह यह तकलीफ अपने सिर क्यों ले? रामदेवीबाई की दो दलीलें यह थीं, एक तो यह कि उन्हें अच्छी तरह याद है उन्होंने उस आदमी से दस रुपये लिये, जिसके नाम से रसीद कटी है, दूसरी जोरदार दलील यह थी कि कालीचरण हर जगह एक को ऐसे ही लिखता है जैसा इस रसीद में, फिर रकम जो अंकों में लिखी हुई है वह रसीद में दूसरी जगह अक्षरों में लिखी हुई है इस से साफ पता लग जाता है कि नौ का अंक नहीं है एक का है। हम यह मानने के लिए तयार नहीं कि पुरुष कमेटी यह न समझ गई हो कि वह गलती पर है पर उसने उस बात का बतक्कड बना दिया। आखिर कालीचरण की गवाही पर मामला तय हुआ। और वह रकम नव्वे की जगह दस ही रही।

पुरुष कमेटी के आये दिन के झगड़े से बचने के लिए महिला कमेटी की मदद से पुरुष कमेटी टूट गई। हां, इतना जरूर हुआ कि जो थोड़ा बहुत रुपिया उसके कब्जे में था वह उस रुपए को दबाकर बैठ गई। उस रुपये को किसी दूसरी संस्था में लगा दिया। पुरुष कमेटी के टूटने से आश्रम को कोई धक्का नहीं पहुँचा और महिला कमेटी की मदद से आश्रम का काम हमेशा की तरह चलता रहा।

यह बात पहले कही जा चुकी है कि पुरुष कमेटी के सब आदमी आश्रम के खिलाफ न थे, हाँ, ज्यादा आदमी खिलाफ थे। थोड़े आदमी आश्रम के काम से खुश थे और वह निजी हैसियत से आखिर दिन तक मदद करते रहे।

महिलाश्रम सन् १८ में खुला। सन् २१ में काँग्रेस ने असहयो आन्दोलन शुरू कर दिया और आन्दोलन से कोई संस्था अछूती न रह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गई। महिलाश्रम कैसे बच सकता था? रामदेवीबाई का लड़का जैनेन्द्र बनारस युनिवरसिटी से पढ़ाई छोड़ कर असहयोग आन्दोलन में शामिल हो गया। वह रामदेवीबाई के भाई के पास नागपुर पहुँच गया। रामदेवीबाई के भाई सन् २१ के मार्च महीने में जेल चले गये। जेल जाने से पहले वह एक पत्र रामदेवीबाई की भौजाई को लिख चुके थे कि उनको आन्दोलन में शामिल होना चाहिये। नतीजा यह हुआ कि उनकी भौजाई, जो उनके साथ महिलाश्रम में काम कर रही थी, नागपुर चल दीं। उसके चले जाने से आश्रम के काम में थोड़ी बहुत अड़चन हुई। असहयोग आन्दोलन जो उठा तो वह खत्म हुआ जब सन् ४७ में हिन्दुस्तान आजाद हो गया। सन् २१ से सन् ३४ तक जेल जाने का काम इतना जोरोंपर था कि मुश्किल से कोई घराना बच पाया, जिसने अपने में से एक दो को जेल न भेजा हो। महिलाश्रम की दो तीन लड़कियों को पुलिस की मार खानी पड़ी, एक को तीन या छः महीने की जेल भुगतनी पड़ी। जो लड़की जेल गई, वह बालविधवा थी और जेल जाने के समय उसकी उम्र १८-१९ से ज्यादा न थी। वह लड़की जब जेल से छूट कर आई तो महिला कमेटी ने उसका स्वागत किया और आश्रम में उसे फिर जगह मिल गई। यह हम इसलिये लिख रहे हैं कि महिलाश्रम समय की लहर से कितना जानकार रहता था, कितना सतर्क था। रामदेवीबाई अगर उदार महिला न होती तो उनके आश्रम से ऐसी आशा नहीं की जा सकती थी। राजकाजी सभाओं में आश्रम की सब लड़कियों को जाने की छुट्टी थी। यह ठीक है कि रामदेवीबाई उनको अपने तरीके और अपने इन्तजाम से भेजती थीं। आश्रम की एक लड़की ने लाहोर काँग्रेस के मौके पर लेडी वालिंटियर कोर में काम किया था। जब जब दिल्ली में काँग्रेस हुई तब तब सारा का सारा आश्रम किसी न किसी तरह काँग्रेस की सेवा में लग जाता था। रामदेवीबाई ने अपनी मेहनत से यह कर लिया था कि आश्रम प्रयाग महिला विद्यापीठ की परीक्षाओं का केन्द्र बन गया था। इससे आश्रम की लड़कियों को बड़ा सुभीता हो गया था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महिला-आश्रम दिल्ली में ऐसी जगह था जिसके सामने तीन-चार गज चौड़ी गली थी और उस गली के दूसरी तरफ टूटे-फूटे मकानों का खंडहर था। उस खंडहर पर मुसलमानों की कुछ झोपड़ियाँ थीं। खंडहर के दाईं तरफ एक मसजिद थी, बाईं तरफ कुछ दूकानें थीं और पीछे आबादी थी। आबादी सब मुसलमानों की थी। आश्रम के दायें-बायें और पीछे हिन्दू आबादी थी। इसलिए हिन्दू-मुसलमान लड़ाई के लिए महिला-आश्रम सरहद्दी सूबे की तरह सरहद्दी मकान था। आश्रम की लड़कियों का रहन-सहन कुछ इस ढंग का था जिस से सामने की मुसलमान आबादी को कोई दिक्कत न होती थी। आश्रम और मुसलमान आबादी में कोई मनमुटाव न था।

आश्रम के सामने के खंडहर का मालिक तो था कोई हिन्दू पर कब्जा उस पर मुसलमानों का था। अदालत से हिन्दू का कब्जा साबित भी हो गया और उसको डिक्री भी मिल गई थी, पर लड़ाई-झगड़े के डर से वह उस खंडहर पर कभी कब्जा न पा सका और मुसलमानों की झोपड़ियाँ उस वक्त तक हमेशा बनी रहीं जब तक वहाँ आश्रम रहा। आश्रम को उन झोपड़ियों की वजह से कुछ आराम ही था, तकलीफ न थी। गर्मियों के दिन में खंडहर खुले मैदान का काम देता था और रात को ठंडक बनाए रखने में बड़ी मदद देता था। उस खंडहर पर अपनी चारपाई डालकर हम भी हफ्तों सोये हैं और रामदेवीबाई की बहू-बेटियां भी उस खंडहर पर रात को सो लेतीं थीं। यह इस बात का सुबूत है कि रामदेवीबाई का व्यवहार दूसरे धर्मवालों के साथ कितना उदार था। पर जब हिन्दू-मुसलमान लड़ाई छिड़ गई तब आपसी व्यवहार जीवित रहने पर भी दोनों तरफ के गुंडे अच्छे व्यवहार को इतना दबा देते हैं कि मरे से बदतर और बेकार हो जाता है। अब जब एक बार हिन्दू-मुसलमान लड़ाई छिड़ी तो महिला-आश्रम जो सरहद्दी मकान था वह कैसे बच सकता था! जब महिला-आश्रम के दायें बायें मकान मुसलमानों पर पत्थर फेंक रहे थे और मुसलमानों की सामने की आबादी हिन्दुओं के मकान पर पत्थर फेंक रही थी तो आश्रम उस हमले से कैसे बचता?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसे हमलों के वक्त हर घर में जितनी हिम्मत की जरूरत होनी चाहिये उतनी रामदेवीबाई में थी। आश्रम में कोई मर्द तो रहता नहीं था, सब लड़कियां या औरतें होती थीं। उनमें हिम्मत बनाए रखना मामूली काम न था। पर रामदेवीबाई के रहते हुए आश्रम सबका सब हिम्मत का पुतला बन जाता था। अगर ऐसा न होता तो सन् २४ के हिन्दू-मुस्लिम दंगे के बाद क्या आश्रम उस सरहद्दी मकान में रह सकता था? हिन्दू-मुस्लिम लड़ाई के शांत होने के कुछ ही दिनों बाद हम दिल्ली पहुँचे और देखा था कि आश्रम की बाइयों और सामने की झोपड़ियों में रहनेवाली मुसलमान औरतों का व्यवहार फिर वैसे ही चलने लगा था जैसा पहले था, मानों उस लड़ाई से उन्हें सरोकार ही न हो। उस सरहद्दी मकान को रामदेवीबाई ने घबराकर या डर कर कभी छोड़ना नहीं चाहा। उसे छोड़ा तो इस वजह से छोड़ा कि उस मकान को किसी ऐसे आदमी ने मोल खरीद लिया था जो खुद उसमें रहना चाहता था, किराये पर देना नहीं चाहता था। इस मकान के बदलने के बाद उन्हें दूसरा मकान परेड ग्राउंड के सामने चांदनी चौक की सड़क पर मिल गया और वहीं उनकी जीवन-लीला समाप्त हुई।

धार्मिक क्रियाकांड में वह किसी महिलाश्रम की संचालिका से कम न थीं। हमारा अनुभव है कि वह उस क्रियाकांड में इतना विश्वास न रखती थीं जितना और रखते हैं पर उस क्रियाकांड के निभाने में वह कभी भूल न करती थीं। उन्हें क्रियाकांड का अभिमान न था, क्रियाकांड की वजह से वह अपने को बहुत बड़ी महिला न समझती थीं। वह आश्रम की लड़कियों पर अपना क्रियाकांड नहीं लादना चाहती थीं। जो क्रियाकांड आश्रम में था वह इतना था जितना रिवाज में था या जितने की समाज उस आश्र से आशा रखती थी। उनका क्रियाकांड किसी दूसरे को बिलकुल नहीं अखरता था। कोई कितना ही क्रियाकांड से रहित क्यों न हो अगर वह सच्चा पक्का आदमी है तो उनकी नजर में ऊंचा ही बना रहेगा। सादगी पसन्द वह बचपन से थीं। विधवा होने पर वह सादगी और बढ़ी और महिलाश्रम की संचालिका होने पर वह सादगी एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाकट, एक सफेद साड़ी और पेटीकोट तक आ गई। मरते दम तक उन्होंने नल का पानी कभी नहीं पिया। इस तरह के और छोटे-मोटे त्याग जो हर घर में महिलायें करती हैं उन सब को वह मरते दमतक निभाती रहीं।

हम ऊपर कह आये हैं, उनकी दोनों लड़कियां आश्रम में काम करती थीं। दोनों विवाहित थीं। दोनों मां बन चुकी थीं। उसमें से एक दिल्ली रहती थी। उधर तो पुरुष कमेटी रामदेवीबाई पर यह इल्जाम लगाती कि यह अपनी लड़कियों को पालती हैं, इधर उनके दामाद यह इल्जाम लगाते, कि इन्होंने अपनी लड़कियाँ हमसे छीन लीं। उनका यह हाल था कि एक ओर उन्हें अपने दामादों से भुगतना पड़ता, दूसरी ओर पुरुष कमेटी से। स्त्रियों के मामले में पतियों को भड़का देना बहुत आसान काम है। पुरुष कमेटी ने इस हथियार से काम लेने में कोई कमी न रखी। कमेटी ने दिल्ली वाले दामाद को इतनी बुरी तरह भड़काया कि एक दिन बीच बाजार में उसने अपने पत्नी की खबर ली। उसकी पत्नी, यानी रामदेवीबाई की बड़ी लड़की इतनी नेक थी कि उसने अपनी शांति और बुद्धिमानी से बाजार के दूकानदारों को इतना अच्छा पाठ दिया कि वह सब दंग रह गये। बात यह थी कि जब उसका पति उसे सरे बाजार पीटने लगा तब वह चुपचाप बैठकर पिटने लगी। यह देख दूकानदार उसके पति को रोकने दौड़े, वह एकदम दूकानदारों से बोली, पति पत्नी के बीच तुमको आने की कोई जरूरत नहीं। अब दूकानदार क्या करते, वह अपनासा मुंह लेकर रह गए। उसकी इस बात का असर पति पर पड़ता ही, और वह भी एकदम शान्त हो गया।

उसी दामाद को अेक बार और इसी तरह पुरुष कमेटी के किसी मेम्बर ने भड़का दिया था। वह मंदिर में रामदेवीबाई के साथ हाथापाई पर उतारू हो गया था। और लोगों की मदद से वह मामला शान्त होगया। एक बार हमने खुद जैनेन्द्र को अपनी माँ को बचाने के लिये अपने बहनोई से लड़ते देखा था। लड़ने का मतलब कोई यह न समझे कि मारपीट तक नौबत आई थी। जैनेन्द्र ने सिर्फ इतना ही किया था कि वह उसको दबा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर बैठ गया था। इतने में रामदेवीबाई वहाँ से चली गई और अपने काम में लग गईं। जैनेन्द्रने उसे छोड़ दिया। इस बात को लेकर कई दिनतक रामदेवीबाई जैनेन्द्र को समझाती रहीं कि उसे वैसा नहीं करना चाहिये था। यह बात जैनेन्द्र के गले किसी तरह न उतर सकी। रामदेवीबाई को अपने दामाद पर पूरा भरोसा न था इसलिये वह जैनेन्द्र से कहने लगी कि अजब नहीं कि उनका दामाद जैनेन्द्र से बदला ले या अपने दोस्तों से जैनेन्द्र को कुछ नुकसान पहुँचावे। जैनेन्द्र अपने बहनोई के स्वभाव से इतना ज्यादा परिचित था कि उसने बड़े विश्वास के साथ अपनी माँ को जवाब दिया कि माताजी जो पुरुष स्त्रियों पर बहुत जल्दी हाथ उठाने को तैयार हो जाते हैं वह पुरुषों से बदला लेने की जल्दी नहीं सोच सकते, आप बेफिकिर रहिये। जो उसके दोस्त हैं वह मेरे भी दोस्त हैं।

यह बात हम सिर्फ इसलिये लिख रहे हैं कि पढ़नेवाले उनकी जिन्दगी से यह पाठ ले सकें कि जब आदमी अपने धुनका पक्का होता है और सच्चे दिल से समाज की भलाई में लगता है तब सारी आफतों को बड़ी आसानी से झेल लेता है। वह हमेशा अपने सारे कुटुंबियों, अपने इष्ट मित्रों को उसी काम में झोंकने के लिये तैयार रहता है। जिस तरह घी का रोजगार करने से हाथ चिकने हुए बगैर नहीं रह सकते इसी तरह समाज सेवा के किसी काम में लगने पर स्वार्थ-सिद्धि हुए बिना नहीं रह सकती। जो चौबीस घंटे समाज सेवा के लिये दे रहा है वह खायगा कहां से? उसका खाना-पीना-पहनना समाज के कुछ लोगों को निरी स्वार्थ-सिद्धि जँचे तो जँचा करे, पर जो लोग उसे पास से देखेंगे वह उसे स्वार्थी नहीं परमार्थी कहेंगे। रामदेवीबाई को पास से देखनेवाली महिला कमेटी परमार्थी समझती थी और हरदम शक्तिभर हर तरह उनकी मदद के लिये तैयार रहती थी। अगर ऐसा न होता तो इतने विरोध रहते कभी संभव था कि वह एक दिन भी दिल्ली टिकने दी जातीं?

खास मौके पर रामदेवीबाई में बेहद बल आ जाता था। कमजोर माँ अपने बच्चे पर आफत आने पर शेरनी जैसा काम कर बैठती है। रामदेवीबाई महिलाश्रम को अपने बच्चे जैसा प्यार करती थीं। आश्रम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब उनका सब से प्यारा अकेला बच्चा था। उसकी खातिर वह अपनी कोख से जन्म दिये बेटी-बेटों को जान खतरे में डाल सकती थीं। यह औरों के लिये भले बड़ी बात हो, उनके लिये बड़ी बात न थी। इस तरह के काम कर डालना उनके लिये स्वभाव बन गया था जिस तरह राजपूत औरतों का अपने पतियों और बेटों को देश के खातिर लड़ाई के मैदान में मरने के लिये भेजना। रामदेवीबाई का अकेला लड़का जैनेन्द्र जब सन् २३ में होशंगाबाद जेल में था और जब किसी वजह से उसे डंडा बेड़ियां मिली हुई थीं तब इस खबर को सुनकर क्या रामदेवीबाई तनिक भी चकित हुई ? क्या उसे देखने होशंगाबाद दौड़ीं ? वह अपने आश्रम के काम में दिल्ली ऐसी ही लगी रहीं मानों कुछ हुआ ही नहीं। वही रामदेवीबाई जिनके लिये बाप और भाई के मरने पर कफन आ गया था वह उस वक्त बिलकुल न घबराईं जब उनका भाई उसी सन् २३ में नागपुर जेल में ५६ दिन से उपवास कर रहा था और सूखकर कांटा हो गया था। क्या स्त्री, क्या पुरुष जिसे देश या समाज से मुहब्बत हो जाती है वह अपने बच्चों पर आई आफत देख सकते हैं पर देश या समाज पर आई आफत देखकर विव्हल हो उठते है जैसे मामूली मांयें अपने बच्चों के लिए। देश और समाज के काम में लगे आदमी पर, कुछ लोगों को, स्वार्थ का इल्जाम लगाने की आदत होती है। यह है तो बुरी बात पर इसलिये अच्छी है कि इस से देश और समाज सेवकों की जाँच हो जाती है। अगर वह कच्चे या सचमुच स्वार्थी हुए तो देश और समाज सेवा छोड़ बैठते हैं और अगर धुनके पक्के हुए तो उस ओर कान दिये बिना ऐसे बढ़े चले जाते हैं जैसे आंखों से अंधोटे बांधे टांगे का घोड़ा।

रामदेवीबाई देश प्रेम और समाज प्रेम में डूबकर हिम्मत की देवी बन गई थीं। उनमें आत्मविश्वास था। उन्हें मालूम था कि आत्मविश्वास सफलता है, और आत्मदुविधा असफलता। उनका लड़का जैनेन्द्र गुजरात जेल में था। उसकी बहूके जी में यह बात आई कि वह अपने पति से मिले। उन्हें अपनी लड़की से यह बात मालूम हुई। वह उसे लेकर गुजरात चलने के लिये तैयार हो गई। बहूके पास उन दिनों पांच छह महीने का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक बच्चा था। दिल्ली से डाक गाड़ी में सवार होकर, रामदेवीबाई बहू-बेटी को साथ लेकर गुजरात चल दी। गाड़ी गुजरात रातको ग्यारह बजे पहुँचती थी। रामदेवीबाई और उनकी बेटी की आंख झपक गई। बहू को, जिसे अपने पति के दर्शन की धुन थी, नींद क्यों आने लगी? वह हर स्टेशन का नाम पूछती और पूछती, गुजरात और कितने स्टेशन है? आखिर उसका मन चाहा स्टेशन गुजरात आ गया। गाड़ी थमते ही बच्चा कुली को सौंप नीचे उतर पड़ी। सास ननद को जगाकर बोली, 'उतरिये, गुजरात आगया'—वह दोनों उतरें उतरें, कि गाड़ी चल दी। गाड़ी दो चार फर्लांग भी न चल पाई कि रामदेवीबाई ने जंजीर खेंच दी। गाड़ी रुक गई। डाक गाड़ी का गार्ड डिब्बे के पास आया, पूछा, किसने जंजीर खेंची? रामदेवीबाई बोली, जंजीर हमने खेंची, हमारा छह महीने का बच्चा कुली के हाथ में गुजरात स्टेशन पर रह गया है। गाड़ी को फौरन वापस लौटाओ।

गार्ड अंग्रेज था। सन् १९३१ का मामला था। सारा हिन्दुस्तान असहयोग आन्दोलन की गूंज से गूंज रहा था। गार्ड ने मामले को ठीक ठीक समझकर बड़ी नम्रता से रामदेवीबाई से कहा, देखिये, गाड़ी को पीछे ले जाने में आधपौन घंटा खराब चला जायगा, स्टेशन यहाँ से चार फर्लांग से ज्यादा दूर नहीं है, हम आपके साथ एक आदमी देते हैं, वह आपका सामान लेकर स्टेशन तक पहुँचा देगा।

रामदेवीबाई बोलीं, यह सब नहीं हो सकता आपको गाड़ी वापिस लौटाना होगी! देर लगने से हमारे बच्चे को अगर कुछ हो गया तो तुम जिम्मेदार होंगे।

गार्डने अच्छी तरह समझ लिया कि वह मामूली महिला से बात नहीं कर रहा, ऐसी महिला से बात कर रहा है जो सरसे पांवतक आत्म विश्वास की पुतली है। बोला,

बहिनजी, हम आपको ट्राली देते हैं, ट्राली चलानेवाला देते हैं उसपर आपका सामान लाद देंगे। आप और आपकी साथी बहन उसपर बैठ जायं आपको कोई दिक्कत नहीं होगी। जरासी देर में स्टेशन पहुंच जायेंगीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामदेवीबाई बोलीं, नहीं, यह सब नहीं हो सकता। गाड़ी वापिस लौटाइये। देर न कीजिये। हम गाड़ी को आगे न चलने देंगे।

रामदेवीबाई कह रही थीं कि उनकी लड़की में कमजोरी आ गई, वह अपनी मां से बोली, 'अम्मा, गार्ड साहब ठीक कह रहे हैं, हमको अंधेरे में चलना नहीं पड़ेगा। हाथ ठेला दे रहे हैं जल्दी स्टेशन पहुंच जायेंगे।

रामदेवीबाई ने अपनी लड़की का हाथ झिटक कर कहा, तुझको क्या मालूम, कि गाड़ी स्टेशन से कितनी दूर है, और हाथ ठेले से वहाँ पहुँचने में कितनी देर लगेगी, इतनी देर में बच्चेपर क्या बीतेगी, कौन जाने ?

गार्ड और रामदेवीबाई की बातचीत में देर लगने से कुछ मुसाफिर गाड़ी से उतरकर गार्ड के पास आ गये। उन आदमियों ने रामदेवीबाई को समझाया, गाड़ी के पीछे करने में आध पौन घंटे से कम न लगेगा, क्योंकि गाड़ी सिग्नल से बाहर हो चुकी है। अब गार्ड साहब या तो खुद जायें, या किसी को स्टेशन भेजें, स्टेशन मास्टर सिग्नल गिरावें, गार्ड साहब ड्राइवर को सिग्नल दें, तब गाड़ी चले। गार्ड साहब ट्राली देरहे हैं, यह ट्राली आपको बैठने के पाँच मिनिट बाद स्टेशन पहुँचा देगी। इसपर रामदेवीबाई राजी हो गईं, और अपनी लड़की के साथ ट्रालीपर बैठकर स्टेशन पहुँच गईं।

एक बार आश्रम की लड़कियों के साथ रेल से सफर कर रही थीं। रेल के सब डिब्बे भरे हुए थे। एक डिब्बे में सिर्फ चार पठान बैठे थे। वह किसी को अन्दर न आने देते थे। रामदेवीबाई पहुँची, डब्बे को खोला और उसमें सब लड़कियों को बिठा दिया। उन पठानों पर उनका इतना रौब छाया कि वह आपस में कहने लगे, "यह औरत नहीं हो सकता, मर्द है।" सचमुच रामदेवीबाई के चेहरे पर जिम्मेदारी का काम करते करते मर्दानगी टपकने लगी थी। वह जब भाषण देतीं, उनकी आवाज में मर्दानगी की धमक रहती, जैसी अॅनीबिसेंट की आवाज में। एक बार नागपुर किसी काम से आईं, वहाँ उनका भाषण हुआ। बॅरिस्टर अभ्यंकर यानी प्रांतिक कांग्रेस कमेटी का प्रेसीडेण्ट, उनका भाषण सुनकर, उनका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रौबदार चेहरा देखकर कहने लगा, 'कांग्रेस को अगर ऐसी दो चार बाइयां मिल जायं तो अंग्रेजी राज का पाँसा पलट जाय।'

आश्रम के लिये चन्दा लाने में उनको अपनेपर इतना विश्वास था कि वह आम तौर से उस वक्त चंदा लाने निकलतीं, जब आश्रम के कोष में इतना कम रुपया रह जाता कि काम करनेवालों को तनख्वा न दी जा सकती होती। इस आत्म विश्वास के बल पर उन्होंने कभी आश्रम के लिये ध्रुव फंड नहीं रखा। जबसे पुरुष कमेटी उनका रुपया दबाकर बैठ गई तबसे उनको ध्रुव फंड करने से घृणा हो गई। मरने से पहले जब उन्होंने आश्रम को खत्म किया तो कुल दो हजार रुपिया फिक्स डिपॉजिट में था, अेक सौ आठ रुपया कुछ आना पाई आश्रम की रोकड़ में था।

अेक घटना सुनिये और नतीजा निकालने की कोशिश कीजिये कि खानपानके मामले में उनके क्या विचार थे। खुद उनका यह हाल था कि उनका ढाई-तीन बरस का पोता उनके चौके में नहीं जा सकता था, लेकिन अपना ढंग वह दूसरोंपर नहीं लादना चाहती थीं। लाहोर कांग्रेस से उसका लड़का जैनेन्द्र वापस आया। उसके साथ कांग्रेस कमेटी के मेम्बर मुजफ्फरहुसैन साथ थे। ओढावे-पहनावे, रहनसहन में मुजफ्फरसाहब बिलकुल हिन्दू मालूम होते थे, नाम मुसलमानी था। देहली में जैनेन्द्र के मेहमान हुए। उन्होंने चौके में बैठकर खाना खाया, जैसे सब लोग खाते हैं। उनके साथ किसी तरह का परहेज नहीं बरता गया। रामदेवीबाई की बड़ी लड़की सुभद्रा, अपनी माँ से बोली, "माँ, तुम वैसे तो बड़ा शोध करती हो और मुजफ्फ़र हुसैन को अपने चौके में खिला दिया?"

रामदेवीबाई बोलीं, वह तो हिन्दू दिखाई देते थे। मैं समझती हूं हिन्दू थे।

उनकी लड़की बोली, उनका नाम तुमने नहीं सुना, मुजफ्फ़र हुसैन?

रामदेवीबाई बोलीं, नाम मुजफ्फ़र होने से कोई मुसलमान हो जाता है? याद नहीं, तुम्हारे मामा उस प्यारेलाल नौकर को 'अजीज-अहमद'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहकर पुकारा कहते थे। यह जैनेन्द्र उन्हींका भानजा है, अैसेही किसीका नाम मुज़फ्फ़र हुसैन रख दिया होगा।

लड़की बोली, नहीं अम्मा, वह सचमुच मुसलमान थे।

रामदेवीबाई बोलीं, सचमुच मुसलमाय थे, तो चलो थाली आगमें रख लेंगे।

लड़की वोली, और भैया का क्या करोगी जिसने उनके हाथका छुआ खा लिया?

रामदेवीबाई बोलीं, मर्दोंका कुछ नहीं बिगड़ा करता। उन में शुद्ध आत्मा रहता है। चीजें झूठी होती हैं, आदमी का मुंह थोड़े झूठा होता है।

गान्धी युग में ऊपर की बात कोई महत्व नहीं रखती। देखना यह है कि रामदेवीबाई बाह्य-कर्म-काण्ड को पालती थीं, पर बेकार चीज समझती थीं। ऊपर की बात से और इस बात से जरा मेल बिठाइये, बरसों उन्होंने अपनी बहू के हाथ का खाना नहीं खाया, क्यों कि बहूका न वह धर्म था न वह जात थी जिस धर्म जात की वह थीं। पर उस बहूके लिये उनका प्यार उतनाही था, जितना किसी और के लिये। अेक बार उस बहूके अेक बच्चे को उन्होंने खुद जनाया था क्यों कि दाई न आ पाई थी। उनका खान-पान, उनकी छुआछूत उनकी अपनी देह से आगे कभी न बढ़ पाया। वह किसी बीमारकी अैसी सेवा कर सकती थीं, कर लेती थीं और करती थीं जैसे किसी अपने छोटे बच्चेकी। अेक बार जब दिल्ली के मेहतरोंने हड़ताल बोल दी तब आश्रम का टट्टीघर साफ करने के वक्त उनका चेहरा देखने लायक होता था। कोई नहीं कह सकता था कि यह पुश्तैनी मेहतरानी से किस तरह कम हैं। अब बताइये उनके छूतछात का क्या अर्थ रह जाता है? यहाँ हम अमरावती में आज एक जीवित बाई का जिक्र किये बगैर न रहेंगे।

वह बाई विधवा है। शायद शान्ता उसका नाम है। आयु २५-२६ होगी। एक छोटी बच्ची उसने गोद ले रखी है। सास ससुर, मां बाप जीवित हैं। दोनों घराने खाते पीते हैं, उसे प्यार करते हैं। उसे किसी तरह की कमी नहीं। खान-पान में वह पक्की है। किसी का छूआ नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खाती, कुए का पानी पीती है, नल के पानी से परहेज है, पर है हरिजन सेवा पर मुग्ध। दिनरात वही उसकी धुन है। वह उन मेहतरों की सेवा करने जाती है, जो उस पानी से नहाते हैं जो गंदी नाली में बहकर जाता है। उनके बच्चों की ऐसे ही सेवा करती है, मानों वह उसी के बच्चे हों। उनकी सेवा में लगे देख उसको कोई यह नहीं कह सकता कि वह मेहतरों में से एक नहीं है। उसका गोरा चेहरा अकेली ऐसी चीज है जो उसको उन सबसे अलहदा कर देता है, नहीं तो वह किसी तरह पहचान में नहीं आ सकती। एक बार जब हम अमरावती गये तो उस बाई के कुछ सहधर्मियों ने, जो कांग्रेस में काम करते थे, हम से कहा, 'आप इस बाई को उपदेश दीजिये कि यह इतना छुआछात न करे। इसका यह हाल है कि सिवाय अपनी जात के और किसी जात का छुआ हुआ नहीं खाती। उसका हरिजन सेवा का हाल हम पहले सुन चुके थे। हमने उस बाई से पूछा, बेटी, तुम इतनी हरिजन सेवक होकर ऐसा क्यों करती हो? उस बाईने जवाब दिया, "मैं किसी के हाथ का खाना कैसे खा लूं? वह सब लोग न तो कुए का पानी काम में लेते हैं और न पानी को छानते हैं।" यह जवाब सुनकर मैंने उसके सहधर्मी बंधुओं से कहा, मैंने इस बाई को खूब समझ लिया। इसे मेरे उपदेश की कोई जरूरत नहीं। इसका छूआछात और खान-पान इसकी हरिजन सेवा की जान है। इस बाई से यह छुड़ाकर मैं इस से हरिजन सेवा छुड़ा दूंगा। और फिर मैंने उसे कोई उपदेश नहीं दिया।

रामदेवीबाई का छुआछूत और खान-पान बस एक तूंबी थी जिसे बगल में दबाकर वह सेवा सागर में बिना हाथ पांव हिलाये तैर सकती थीं।

उनकी सारी छूआछूत उनकी सवारी थी। औरों की छूआछूत की तरह वह उसकी सवारी कभी न बन पाई। जरा इसका मेल बिठाइये। एक ओर मेहतरानी तक का काम कर लेना और दूसरी ओर जब प्राण निकलने को हैं तब नल के पानी से इन्कार कर देना। रातको दवा तक न खाना और आखिर प्राणों को निकल जाने देना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसको आप चमत्कार कहिये, बरकत कहिये, पुण्य प्रभाव कहिये या कुछ भी कहिये वह गरीबी में रहीं, अमीरी में रहीं, जहाँ रहीं वहाँ कभी खाने-पीने की कमी न हो पाई। घरका इंतजाम करना उन्हें इतना अच्छा आता था कि कम-से-कम में ज्यादा से ज्यादा मेहमानों को वह, न जाने किस तरह, खिला देती थीं। उनके जीते जी शायद ही कोई फ़क़ीर खाली हाथ गया होगा। आज उन्हीं के कुटुंबी अेक मेहमान से घबरा जाते हैं, उनकी जिन्दगी में दस मेहमान उस घर से इस तरह खा जाते, जैसे दस शहद की मक्खियां किसी फूल से शहद ले गई हों। रातके बारह बजे जब वह सोई हुई हैं हिन्दी के उपन्यास सम्राट प्रेमचंद उनके मेहमान होते हैं। जैनेन्द्र घबरा उठता है। रातके बारह बजे बाजार से कोई चीज कैसे मिल सकती है? जैनेन्द्र सोच नहीं पाता कि रामदेवीबाई की आवाज लगती है, बेटा, प्रेमचंदजी को खाने के लिये भेजो। यह थी उनकी हिम्मत, यह था उनका अतिथि प्रेम और यह था उनका आत्मविश्वास। यह प्रेम वह पेट से ले कर जन्मी थीं। उनको अपना छोटा भाई इतना प्यारा था कि उसने किसी वक्त भी जब किसी खाने की चीज को माँगा, कि उन्होंने चूल्हा सिलगा कर झट उसे बना कर दी। प्रेम कुछ है ही अैसी चीज जो बेहद फुर्ती और बेहद साधन-सूझ पैदा कर देता है। यही घरेलू प्रेम रामदेवीबाई में बढ़ कर समाजप्रेम और देशप्रेम का रूप न लेता तो क्या वह मरते दमतक अपने में इतनी ज्यादा फुर्ती और साधन-सूझ कायम रख सकतीं? आज उनके छोटे रूप में उनकी बड़ी लड़की सुभद्रा मौजूद हैं। कोई चाहे तो उसका घर देख सकता है। वह थोड़े से साधनों में अपने घरको इतनी अच्छी तरह सम्हाल लेती है जितना कोई बहुत साधन सम्पन्न नहीं सम्हाल सकता। गलत या सही हमारे मन पर रामदेवीबाई और उनकी लड़की ने अैसी छाप बिठा दी है कि हमारे मुँह से यह निकले बिना नहीं रह सकता कि नीयत से बरकत होती है। जड़वादी शायद इस बात को न मानें, पर आत्मवादी इसे इन्कार न करेगा।

रामदेवीबाई को अगर किसीने उनकी मौत से बरस-दो बरस पहले देखा होता तो वह शायद अपने मन पर यह छाप ले जाता कि उन्हें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने पोतीपोतों और नातो नातिनों से बहुत मोह है। पर उसी आदमी ने अगर उनको मरते वक्त देखा होता तो वह समझ लेता कि उनका सारा जीवन जल में कमल के समान था। अगर अैसा न होता तो जिस तरह उनका जीवन बीता था उस दुख को वह नहीं सह सकती थीं। यह ठीक है उन्होंने सिर्फ ६९ वर्ष की उमर पाई, उनको ७०-७५ का होकर मरना चाहिये था या इससे भी ज्यादा। हम यह कह सकते हैं कि उनकी अकाल मृत्यु हुई, पर इस अकाल मृत्यु का कारण यह नहीं था कि वह किसी तरह चिंतित थीं। आखिरी दम तक उनका मन शान्त था, उनकी बुद्धि स्वच्छ थी, उनके विचार निर्मल थे, उनकी इन्द्रियाँ उनके वश में थीं। बेहद तकलीफ को वह इस तरह सह रही थीं मानों कुछ है ही नहीं। इसलिये यही कहना पड़ेगा कि उनकी अकाल मृत्युका कारण उनके खानपान के वह बेतुके तरीके थे जिनको वह धर्म समझे हुए थीं। और जिन डॉक्टरों, हकीमों या वैद्यों ने उन्हें देखा उनकी यही राय थी जो हमारी राय है। अैसी शान्त महिला को और जलोदर की बीमारी! जलोदर में क्या होता है? यह कोई किताब उठाकर देख लीजिये उसमें जो कारण दिये हुए हैं वह अेक भी रामदेवीबाई पर लागू नहीं होते। उनका जिस तरह का खानपान था वैसा खानपान आम तौर से देखने में नहीं आता इसलिये हकीम वैद्य यह कल्पना नहीं कर सकते कि उस तरह के खानपान से जलोदर हो सकता है। काश उनके जैसी मौत यूरोप में हुई होती तो जलोदर के अेक नये कारण की स्थापना हो गई होती। हम हकीम वैद्य नहीं हैं, पर हमारी यह राय है कि उन्होंने नल का पानी न पीने की वजह से जो समय बेसमय अपनी प्यास को मारा उसकी वजह से उनके पेट के अंदर की ग्रंथियों ने पानी पैदा करने के लिये जोर मारा और फिर वह धीरे धीरे पानी पैदा करने लगी और मठरी जैसे दुर्पच खाने के लिये अगर वह ग्रंथियाँ अैसा न करतीं तो रामदेवीबाई को ५९ बरस तक कैसे जिंदा रख सकतीं? उनके खाने पीनेकी कोई अेक झंझट थी? वह मिल का पिसा आटा न खाती थीं, कितने दिन अैसे होते थे जिनमें वह सब्जी तरकारी नहीं खा सकती थीं। देह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो देह है, वह आत्माका घोड़ा है। वह ठीक दाना पानी न मिलने पर जहांतक बने वहांतक साथ निभाता है, क्यों कि कुत्ते और घोड़े की तरह वह आत्माका बड़ा वफादार है। पर वफादारी से पेट नहीं भरता। पेट तो ठीक ठीक चीज से भरता है, पर रामदेवीबाईने समझ रखा था कि उनका देहरूपी वफादार घोड़ा कुछ खाकर जी सकता है, पर वैसा न हो पाया।

यह मानी हुई बात है, जिसको जितना राग होता है उतना उसको द्वेष होना चाहिये। जितना उन्हें अपनी आश्रम की छात्राओं से प्रेम था उतनीही उनकी देखरेख सख्त थी। विधवाओं की देखरेख और ज्यादा सख्त थी जिसका नतीजा यह था कि सधवा और कुमारी आमतौर से, और विधवा खास तौर से उनके कड़े शासन से हमेशा तंग रहती थीं। आज भी जो बहुत समझदार विधवायें अैसी जीवित हैं जो उनके आश्रम की छात्रा रह चुकी हैं वह भले ही उनकी तारीफ करती हों, पर वह जो जरा नासमझ हैं उनकें मुंहसे तो उनकी बुराईही सुनने को मिलेगी और बुराई यही कि उनका शासन सख्त था। इतने सख्त शासन के रहते हुए उनकी मौत से दो बरस पहले अेक संगीन मामला हो ही गया। जिसकी चोट वह न सह पाईं। उनके आखिरी दिनों में हम अेक महीनेतक उनके साथ थे। मौत से ठीक सात दिन पहले वह अपने दिलको उस मामले से हलका कर पाई थीं जिसका उनको बहुत दुख था। शायद इस दिलके हलके होने में यह वजह रही हो कि उन्होंने अपनी मौत से दस दिन पहले आश्रमको खत्म कर दिया था। उसकी सब छात्राओं को उनके घर भेज दिया था। वह संगीन मामला, जिसका उन्हें बहुत दुख रहा, वह था अेक विधवाका अेक ब्रह्मचारी से सम्बन्ध हो जाना। रिवाज के अनुसार साधु ब्रह्मचारी आश्रम में आ जा सकते थे। उपदेश वगैरह दे सकते थे। अैसे गन्दे मामले को हम विस्तार के साथ कहना पसन्द नहीं करेंगे; सिर्फ इतना कहेंगे कि किसी तरह एक ब्रम्हचारी ने अेक विधवा को फुसला लिया। वजह यह थी कि वह उसी की जात की थी, उसी के गांव की थी। उसका उससे कोई दूरका रिश्ता भी था। इतनाही नहीं, इससे भी बढ़ कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अेक बात और थी, उस विधवा का कुछ पैसा उस ब्रह्मचारी के पास ट्रस्टी की हैसियत से रखा हुआ था। इन सब बातों ने मिल कर रामदेवीबाई के आश्रम के सारे प्रबंध और सख्ती सबको धोखे में डाल दिया, सबको बेकार साबित कर दिया। रामदेवीबाई जिस सचाई के बल पर पुरुष कमेटी से भिड़ बैठती थीं और महिला कमेटी पर धाक जमाये रखती थीं वह सचाई ही जब हिलगई तब उन में वह बल न रह गया जो रहना चाहिये था। इतनाही नहीं, उस विधवा के सम्बंध में महिला कमेटी ने जो कदम उठाये उनसे उनका आत्मा दुखी हुआ। वह अैसा समझने लगीं कि वह बहुत बड़े दण्ड की भागी हैं। उस मामले को सह जाने के लिये जितने ज्ञान की जरूरत थी उतना ज्ञान भी उनके पास न था, इसलिये वह मानसिक दुखको दूर न कर पाईं। हाँ, उस दिन जिस-दिन अपनी बहू का जीने पर से उतरते पाँव फिसल कर गर्भ गिर गया, उनको मालूम हुआ कि उनको अैसी सजा मिलगई जिसकी वह हरतरह हकदार थीं। इससे उनके मन को कुछ तसल्ली हुई। जिस वक्त उन्होंने यह घटना हमको सुनाई, उन्होंने आँसुओं से अपने सारे कपड़े तर कर लिये थे। यह ठीक है, वह इसके बाद आश्रम को दो बरस खींच ले गईं, पर अब आश्रम अैसे ही चल रहा था जैसे वह चाक जो कुम्हार के डंडेसे बल पाकर डंडा हट जाने पर भी चलता रहता। बस अब आश्रम चलता था, रामदेवीबाई उसे चलाती न थीं।

जब वह बीमार पड़ीं तब उनकी देख-भाल के लिये आश्रम में उनसे कोई बड़ा न था। उनकी देखभाल किस तरह की जाय? उनके लिये किस हकीम-वैद्य को बुलाया जाय? यह तय करना उनका अपना काम था। वह खुद क्या तय करतीं यह वह समझ न पाती थीं। उनकी दो नातिनें जो उनके बारे में सोच सकती थीं वह आश्रम के चन्दे के लिये बाहर गई हुई थीं। इसलिये शुरू शुरू में बीमारी की ज्यादा परवाह न की गई। जब बीमारी काफी बढ़ गई और रामदेवीबाई का उठना बैठना बंद हो गया तब इधर उधर तार चिट्ठी देकर बुलाया गया जिनसे सेवा की कुछ आशा थी। उनमें से हम भी एक थे। हम वक्त से पहुँच गये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम जिस वक्त पहुँचे उस वक्त रामदेवीबाई के मोह का वह दिखावा खत्म हो चुका था जिसे वह बरसों से दिखाती आ रही थीं। उनका पाँच बरस का पोता उनके पास आता और चला जाता। वह न उसको बुलातीं और न कभी यह पूछतीं कि उसने क्या खाया और कब खाया। जब पोते के साथ यह बर्ताव था तब बेटे बेटियों के साथ क्या होगा, उसका अंदाजा पढ़नेवाले अपन आप लगा सकते हैं। दिसम्बर का महीना था, दिल्ली की सरदी! पांच सेर रूई का लिहाफ जिसका मुकाबला न कर सके, उस सरदी में जलोदर की तकलीफ की जलन रामदेवीबाई को इतनी जोर की होती थी कि हम बरफ का डला उनके पेट पर घण्टों रखकर उन्हें कोई आराम नहीं पहुँचा सकते थे। हो सकता है, उस बरफ से उनकी जलन कुछ कम होती हो। ऐसी हालत में रामदेवीबाई का दिमाग इतना सही था कि वह ऊँचे दरजे की बात सोच सकती थीं। एक दिन हम से बोलीं, एक बहुत तकलीफ में दूसरी बहुत तकलीफ, तकलीफ नहीं रह जातीं। वह उनके अनुभव की बात थीं। जब किसी तरह उनके पेट का पानी कम न हुआ, न निकला तब डॉक्टर की मदद ली गई। यहां यह खयाल रहे, रामदेवीबाई की बीमारी में डॉक्टरी की ऊंची मदद नहीं ली जा सकती थी, क्यों कि वह बिक्री की चीज थी, और इतने पैसे का कोई इंतजाम न था। दवाओं के मामले में उन डॉक्टरों की मदद यों नहीं ली जा सकती थी कि रामदेवीबाई अंग्रेजी दवा खाने के लिए तैयार न थीं। जो रात को दवा नहीं खा सकतीं उनसे डाक्टरी दवा खाने की उम्मीद कैसे की जा सकती है? आखिर जैनेन्द्रकुमार के एक दोस्त डॉक्टर की मदद ली गई। उसके आने पर यह सवाल खड़ा हुआ कि उनको पेशाब उतारा जाय। उसके लिए एक नली डालने की जरूरत थी। यह काम उनकी बहू के सुपुर्द हुआ, पर वह नली न डाल सकी और उस काम के बिलकुल अयोग्य साबित हुई। यही काम आश्रम की दूसरी लड़कियों से लिया गया। सबकी सब अयोग्य साबित हुईं। यह देख हम बड़े अचरज में आ गये कि आजकल की यह क्या शिक्षा है जो बच्चों को इतनी जानकारी नहीं कराई जाती कि वह अपनी देह का थोड़ा बहुत हाल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी जानें। हाँ, तो जब सब लड़कियाँ फेल हुईं तब रामदेवीबाई डॉक्टर से बोलीं, आप लड़कियों को छोड़िये, आप खुद वह नली लगाइये। वह नली लगाई गई। मामूली दो चार बूंद पेशाब आया, नतीजा कुछ न हुआ। डॉक्टर बोला, पेट में सूराख करना होगा। रामदेवीबाई बोलीं हाँ, कीजिये। रामदेवीबाई को बिठाकर डॉक्टर ने उनके पेट में सूराख किया। हमने देखा कि सूराख करने की तकलीफ को रामदेवीबाई ने इतना भी नहीं माना जितना लोग इंजेक्शन यानी सूई लगने को मानते हैं। हम यह कहकर अपने पढ़नेवालों पर यह हरगिज असर नहीं डालना चाहते कि रामदेवीबाई कोई सिद्ध थीं या उन्हें कोई तकलीफ नहीं होती थी। यह बात कि उनको तकलीफ क्यों नहीं हुई, रामदेवीबाई पहले ही अपने मुँह से कह चुकी थीं कि बहुत तकलीफ में दूसरी तकलीफ छिप जाती है। उनको जलोदर की इतनी तकलीफ थी कि पेट में सूराख होने की तकलीफ कोई तकलीफ न रह गई, पर उस सूराख के रास्ते पाव आधपाव से ज्यादा पानी न निकला। या तो वह सूराख ठीक नहीं हुआ, या अैसी जगह हुआ जहाँ से ज्यादा पानी न निकल सकता था। उसके बाद वैद्य, हकीम के इलाज चलते रहे, पर कोई नफा न हुआ।

किसी ने उनको कांजी का पानी पीने के लिये बताया। कांजी बनाने का काम आश्रम की किसी लड़की के सुपुर्द हुआ। कांजी का पानी बनने में शायद दो-अेक दिन लगते हैं। जब वह बनकर तैयार हुआ और उन्हें दिया गया तो वह इतना खराब था कि रामदेवीबाई उसे जीभ पर न रख सकीं। हमने उसे चाखा। वह सचमुच अैसी चीज थी कि उसे कोई नहीं पी सकता था। पता लगा नमक की जगह उसमें फिटकरी डाल दी गई थी। जैसे ही रामदेवीबाई को यह पता चला, वह इतनी बीमार होते हुए हंस पड़ीं और किसी की शिकायत न की।

सात आठ रोज तक उनका यह हाल रहा कि वह कुछ न खा सकती थीं। भूख एकदम जवाब दे गई थी। प्यास अलबत्ता थी। प्यास उनको काफी तकलीफ देती थी। पानी वह पी नहीं सकती थीं, क्योंकि पानी के लिये पेट में जगह न थी। पानी उनको चटाया जाता था। प्यास बुझाने के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिये पेटपर बरफ का डला फेरा जाता था या कभी कभी होठों पर पानी चुपड़ दिया जाता था। पहली दिसम्बर से उनको अपनी मौत का ज्ञान होने लगा। उनके होश हवास ठीक थे, इसीलिये उन्होंने अपना पाठ करना शुरू किया। जोर से बोलने की कोई ताकत उनमें न रह गई थी। तकलीफ की वजह से मनको पाठ में लगाने में बहुत कोशिश करना पड़ती थी, पर उन्होंने कभी किसी से यह नहीं चाहा कि कोई उनके लिये पाठ करे। किसी और को यह बात सूझी भी नहीं। उनकी परिचर्या में कोई कमी नहीं हुई। चौवीसों घंटों एक नहीं, दो-दो तीन-तीन आदमी उनके पास मौजूद रहते। हां, इस बात का परेखा उनके बेटे-बेटियों के जी में रह गया कि उन्हें डॉक्टरी सहायता वैसी न मिल सकी जैसी मिलनी चाहिये थी। पर इस मामले में हमारा खयाल है कि वह अगर मिलती तो कोई खास नफा न होता। हो सकता है, उस मदद से रामदेवीबाई का मानसिक दुख और बढ़ जाता। हम देखते थे, उनके गले के नीचे पानी नहीं उतर सकता था। यह नहीं कि उनके गले में कोई खराबी थी, सिर्फ इस वजह से कि पेट में जगह न थी, फिर हकीमों, वैद्यों, डाक्टरों की दवा कौन पीता? हम यह देखते थे कि उनके लिये जब कोई दवा आती तो उसके बारे में मामूल से ज्यादा पूछताछ करतीं। कुएं के पानी की प्रतिज्ञा होने की वजह से कोई पतली दवा वह पी न सकतीं और फिर दवाओं के लिये पेट में जगह कहाँ थी? एक ऑपरेशन बच रहा था जिसके बारे में उनके बेटे के दोस्त डॉक्टर की यह राय थी कि इस हालत में ऑपरेशन करना मौत बुलाना है। अब डॉक्टरों की मदद ली जाती तो इससे ज्यादा क्या हो सकता था कि कि मौत ५ दिसम्बर को न होकर १–२ दिसम्बर को हो जाती। हमारी राय है कि डॉक्टरी मदद न मिल सकी इसमें रामदेवीबाई की आत्मा के लिये कुछ अच्छा ही रहा। उनके बेटे-बेटियों का परेखा बेकार।

दो-तीन दिन से उनका यह हाल था कि एक दो बूंद पानी अन्दर जाता था, पर निकलती एक बूंद न थी। आखिर ५ दिसम्बर को दिन के ९ बजे एक उल्टी हुई। उल्टी करने के लिए वह खुद उठी। कोई कपड़ा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्होंने खराब नहीं होने दिया। उल्टी से उनको काफी आराम मिला। घंटे घंटे भर बाद उल्टियाँ आने लगीं, वह हर बार उठतीं और उल्टी किसी बर्तन में ही करतीं। कोई कपड़ा कभी खराब न होने देतीं। शाम तक ५-७ उल्टी जरूर हुईं और हर उल्टी पर उनकी तबीयत में बहाली आई। सबको तसल्ली हुई। रामदेवीबाई को खुद भी आराम मालूम हुआ। पर उन्होंने कभी कोई बात ऐसी मुंह से नहीं निकाली जिस से यह टपकता हो कि अब उनको मौत का डर नहीं रहा। होशहवास उनके बिलकुल दुरुस्त थे। बोलती न थीं, इशारा करती थीं, कुछ पूछने पर बोल भी देतीं। रात को ९ बजे की उल्टी के बाद उनको हल्कीसी बेहोशी आई। उस बेहोशी को देखकर हमारा मन एकदम बोल उठा कि अब यह रातभर जिन्दा नहीं रह सकतीं। हमने फौरन उनके बेटे को अपने मन की बात कह दी और हमें अपने अंदाजे पर इतने जोर का विश्वास हुआ कि हमने उनकी लड़कियों, उनके दामाद, उनकी नातिनों सबको बुला भेजा, जो उन दिनों सबके सब दिल्ली थे। उन्हें समझा दिया कि अब रामदेवीबाई यह रात किसी तरह नहीं निकाल सकतीं पर उनके पास बैठकर किसी को घबड़ाने की जरूरत नहीं। वह सब मान गये और उनके पलंग के आसपास सब चुपचाप आकर बैठ गये। दस बजे तक उनका सारा कुटुम्ब जो दिल्ली में था इकट्ठा हो गया। आश्रम की वह दो एक छात्रायें मौजूद थीं, जिनको लेने अभी कोई न आ पाया था। छोटी लड़कियों को छोड़ सभी जाग रहे थे।

९ बजे की उल्टी के बाद दो उल्टी और हुईं। हर उल्टी के बाद मिनिट दो मिनिट के लिये बेहोशी आती थी। वह बेहोशी हमसे हर बार यह कहती मालूम होती थी कि अगली बेहोशी देखने को न मिलेगी। रामदेवीबाई की हर उल्टी से तकलीफ जरूर घटती थी, पर इस तकलीफ की घटवारी का आनन्द उनकी देह भले लेती हो, उनका आत्मा नहीं लेता था। अत्मा देह छोड़ने का पक्का इरादा कर चुका था। उनका बेटा जैनेन्द्र माँ को भक्ति में डूब कर इस बात से नाराज था कि वह उल्टी करने के लिये बार बार उठती क्यों हैं, क्यों नहीं पड़े पड़े उल्टी कर लेतीं, जब कि उनकी सेवा के लिये इतने आदमी मौजूद हैं और वह खुद मौजूद है। एकाध बार उसने इसी बात को लेकर अपनी माँ को झिड़का भी, पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस झिड़की का रत्तीभर असर रामदेवीबाई पर नहीं हुआ। भला-बुरा कुछ असर होता तो हम जरूर ताड़ लेते। हम नहीं समझते कि हम में उस वक्त योग्यता कहाँ से आ गई थी कि हम हर वक्त उनके हर हिलन-डुलन से उनके मनका भाव ताड़ लेते थे। आखिर उसी ५ दिसम्बर को ११ बजकर ३५ मिनिट पर वह फिर उल्टी के लिये उठीं और उठते उठते उन्होंने हमें और अपने बेटे जैनेन्द्र को कुछ इशारा किया। हम दोनों दायें बायें बैठे थे। उस इशारे का मतलब हम यही समझे कि हमें वह बिलकुल अपने पास चाहती हैं। हम दोनों पास आगये। उनके बेटे जैनेन्द्र ने फिर वही प्यार की झिड़की दी और यही लफ्ज कहे, 'आप बार बार क्यों उठती हैं ?' यह बातें जो हम लिख रहे हैं, लिखने में जितना समय लगा है या पढ़ने में जितना समय लगेगा उससे कम समय में यह सब काम हो गया था। यानी इन सब बातों में सिर्फ इतनी देर लगी, जितनी देर में उनका सर तकिये से इतना ऊँचा उठा कि वह आसानी से उल्टी कर सकें, पर उल्टी नहीं हुई, मुंह खुला का खुला रह गया, आँखें खुली रह गईं। यह देख उनके बड़े दामाद तुरन्त उठे और उन्होंने उनका मुँह बंद कर दिया और आँखें ढंक दीं। सबसे पहिले वही समझे कि रामदेवीबाई की मौत हो गई। उनको पलंगपर लेटा दिया गया और जल्दी ही उनको जमीन पर ले लिया गया, रजाई उढ़ा दी गई। मौत के दूसरे क्षण ही रोना-पीटना शुरू हो गया जो हमारी राय में बिलकुल बेकारसी चीज थी। पर रिवाज और रिवाज के बल पर पैदा हुए मनोभावों को कोई क्या करे। उनकी मौतपर सिर्फ तीन आदमी नहीं रोये। एक हम, एक उनका बेटा जैनेन्द्र, और तीसरी उनकी नातिन शकुंतला। रोने पीटने में सबसे अव्वल रहीं उनकी लड़की सुभद्रा और दूसरा नम्बर दिया जा सकता है उनकी नातिन ज्ञान को। जितनी बाइयाँ उस समय वहाँ मौजूद थीं वह सब रोईं और जितने मर्द मौजूद थे उनकी आँखों में आंसू थे।

उनकी नातिन शकुन्तला क्यों नहीं रोई, यह हम कुछ न समझ पाये और आज भी नहीं बता सकते। उससे हमने पूछा भी था पर जो उसने बताया वह हमें अधूरा मालूम हुआ, हमें जँचा नहीं। जैनेन्द्र के न रोनेकी बात हम खूब समझते हैं। वह बेहद दुखी था, पर उसका दुख पानी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बननेकी बजाय आग बना हुआ था। अिस आगने क्रोध का रूप ले लिया था, फिर आंसू कहाँ से बहते ? यह क्रोध उसका किसपर था इसे हमें बताने की जरूरत नहीं। वह उसको खुद ही अपने "माताजी" नामके लेखमें साफ साफ खोलकर बता चुका है। रही हमारे न रोने की बात, उसके जाननेकी पढ़नेवालोंको जरूरत नहीं।

रामदेवीबाई की मौत के साथ हलकी बारिश आने लगी। मौत और बारिश साथ साथ आये। शकुंतलाने आंगन में पड़े कपड़े उठाना, अपनी नानी की मौतपर रोने से ज्यादा जरूरी समझा। बारिश अेक दो मिनिट से ज्यादा न रही। बारिश खत्म होने के बाद जैनेन्द्र फौरन कागज कलम दवात लेकर अपनी मां की लाश के पास दिल्ली के पत्रों को चिट्ठी लिखने बैठ गया। यह चिट्ठियां १२-३० बजे तक दैनिक पत्रों के दफ्तरों में पहुँच गईं। अगर यह पत्र न भेजे गये होते तो हो सकता है सुबह रामदेवीबाई की रथी उठते वक्त इतने आदमी मौजूद न होते जितने थे।

जमना के किनारे जब चिता जलाई गई तो चिता जलने के थोड़ी देर बाद चितामें से अेक पानी की धार निकली जो चिता से दो-तीन गज ऊँची चली गई। वह कई मिनिटतक फव्वारे की तरह चितापर गिरती रही। स्मशानपर पत्रों के अेडीटर और संवाददाता मौजूद थे। वह इस बात को ले उड़े। चितामें से धार निकलने की बात पत्रों में जगह पा गई। हो सकता है, पत्र पढ़नेवालोंने इसे कोई चमत्कार समझा हो, पर वह असी बात न थी। रामदेवीबाई को जलोदर की बीमारी थी, जलोदर यानी पेटमें पानी भर जाना। उसी जलोदर के लिये डॉक्टर ने पेट में सूराख किया था। उसी सूराख से आग की गर्मी पाकर पेट का पानी धार बनकर निकलने लगा और छोटा सूराख होने की वजह से और दबाब की ज्यादती से वह ऊँचा गया और देर तक निकलता रहा।

६ दिसम्बर को शाम के वक्त रामदेवीबाई के फूल रिवाज के अनुसार जमना में बहा दिये गये और रामदेवीबाई की जीवन-लीला सपन की चीज बन गई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

: ६ :

बाबू दयाचंद्र गोयलीय

सन् १९१० से पहले समाज सुधार और धर्म-शिक्षा फैलाव के लिए कई लोग कोशिश में थे, उन्हें कुछ सफलता मिली थी, पर आज जो धर्म-शिक्षा का प्रसार जगह-जगह फैला हुआ है, यह इतना फैला न मिलता अगर समाजने बाबू दयाचन्द्र गोयलीय जैसा सेवक न पाया होता।

मुजफ्फरनगर जिले के छोटे से गाँव गढ़ी अब्दुल्लाखाँ में उनका जन्म हुआ। उनकी बचपन की तालीम वहीं आसपास मुजफ्फरनगर और मेरठ म हुई, बी. ए. उन्होंने जयपुर कालेज से किया। यह जानकर अचरज होगा कि हिन्दी की उन्होंने कहीं तालीम न पाई थी, उसे अपने आप सीखा था वह तब, जब वह समाज सेवा के मैदान में आए। समाज-सेवा का काम उन्होंने उस वक्त शुरू किया, जब वह कालेज में दाखिल हुए। बी. ए. म उन्होंने फ़ारसी ले रखी थी। यह हम इसलिये लिख रहे हैं कि उर्दू-फ़ारसी पढ़े किसी हिन्दू को हिन्दी सीखने में बेहद आसानी होती है और जल्दी सीख ली जाती है। जल्दी ऐसा आदमी हिन्दी के साहित्यकारों में अपनी जगह बना लेता है, वजह यह है कि हिन्दू का धर्म हिन्दी में होने से धर्म सम्बन्धी खास-खास शब्द उसे पहले से आते होते हैं और पुराण की कथाएँ उसे अपनी नानी, दादी, बुआ-बहनों से हिन्दी के शब्दों में सुनने को मिलती रहती हैं, इस तरह हिन्दू को उर्दू फारसी रूंगे में आ जाती है। बाबू दयाचन्द्रजीने हिन्दी का अभ्यास जयपुर में बढ़ाया और श्री अर्जुनलालजी सेठी की जैन-शिक्षा-प्रचारक समिति में काम करने से धर्म-ज्ञान में ऊँचे दर्जे की जानकारी हासिल कर ली। कुछ दिनों में वहाँ के परीक्षा बोर्ड के मेम्बर बन गये और जल्दी ही रजिस्ट्रार हो गये।

हम पूरे छः महीने जयपुर में उनके साथ रहे हैं। जब भी हमें उनकी याद आती है तब उनकी पढ़ाई के ढंग की ओर पढ़ाई के साथ-साथ उनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काम करने की पूरी तस्वीर हमारी आँखों के सामने आ जाती है। बी. ए. के इम्तिहान के तीन माह रह गये पर वह परीक्षा बोर्ड की बैठकों में जाने से कभी न चूकते, इम्तिहान के पर्चे तैयार करने में उन्हें कोई अड़चन न होती। परीक्षा बोर्ड के रजिस्ट्रार के नाते उन्हें जगह-जगह पर्चे भेजने में कभी देर न होती, पर्चे भेजने का काम कितना नाजुक होता है और किस होशियारी से करना पड़ता है इसका अन्दाजा वे लोग लगा सकते हैं, जो कभी रजिस्ट्रार रहे हैं। फिर वह किसी सरकारी परीक्षा यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार तो थे नहीं, वह तो एक समाजी घरेलू यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार थे। न उन्हें कोई चपरासी मिला हुआ था, न कोई पूरे वक्त वाला लिखारी (लेखक)। लिखारी का बहुत-सा काम व चपरासी का सारा वह खुद करते। बी. ए. के इम्तिहान के अब दो महीने रह गये हैं, पर वह पढ़ाई के काम के साथ साथ समाजी कामों में कम-से-कम दो घण्टे जरूर जुटते हैं। कालिज की गैरहाजिरी कभी नहीं करते, कल बी. ए. का इम्तिहान शुरू होनेवाला है, उनके काम के तरीके में कोई अन्तर नहीं। यह सब होते बी. ए. में अच्छे नम्बरों से और अच्छे डिवीजन में पास हुए। यह थी सच्ची लगन और इस लगन का यह नतीजा होना ही था।

होता, कि ऐसा जवान ज्यादा दिन जीता। ऐसा होता तो न जाने समाज को कितना फायदा पहुँचा होता। बी. ए. करने के बाद कुछ दिन ललितपुर में मास्टरी की, वहीं से विवाह किया और एक दुधमुहाँ बच्चा और विधवा छोड़कर इस दुनिया से जल्दी चलते बने। क्या मास्टरी की हालत में, क्या बीमारी के पलंग पर, हर वक्त और हर जगह उनका कलम चलता ही रहा। उनकी विचार-धारा उसी वेग से बहती रही। लखनऊ में जब वह मौत के बिस्तर पर लेटे हुए थे, तब हम उनसे मिले। मौत का बिस्तर हम कह रहे हैं, उन्होंने एक क्षण के लिए अपने आप को मौत के बिस्तर पर नहीं माना, न ही समझा और न ही वैसा करने दिया। हमसे उन्होंने एक मिनट भी न अपनी बीमारी की बात की, न और कोई कमजोरी की बात की। जो चर्चा रही वह इस बात की रही कि हम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस दिन लखनऊ की आम सभा में क्या बोलनेवाले हैं। हमें अचरज है, ऐसे आदमी को मौतने अपने पंजे में फँसाने के लिये कौनसा वक्त निकाला होगा! हमारा विश्वास है, मौत उसके पास आते डरती है, जो मौत से नहीं घबराते, जो मौत की बात कभी नहीं सोचते। कुछ भी हो यह सच है कि मौत उन्हें ले गई, कैसे ले गई? कौन जाने?

उम्र के इस छोटे से हिस्से में न जाने उन्होंने क्या कर डाला। दो सौ-ढ़ाई सौ सफे की 'मितव्ययता' एक किताब लिख डाली। धर्म की तीन छोटी पुस्तकें लिख डालीं, जाति-प्रबोधक नाम का एक पर्चा सफलता-पूर्वक चलाकर दिखा दिया। जगह-जगह जाकर प्रचार किया, क्योंकि लिखने के साथ-साथ बोलने का कमाल भी उनमें था। जवान थे, जोशीला बोलते थे, पर मनोहर बोलते थे।

सुनिए, वह ऐसे घराने में पैदा नहीं हुए थे, जो पढ़ाई का खर्चा बरदाश्त कर सकता, शायद इसी वास्ते वह मामूल से ज्यादा मेहनती और बुद्धिमान थे। एक से ज्यादा बार उन्होंने अच्छे दरजे में पास होकर वज़ीफा यानी छात्रवृत्ति पाई। जैन अनाथालय के संस्थापक चिरंजीलालजी ने इस मामले में उनकी थोड़ी-बहुत मदद की, रायबहादुर मोतीसागरजी के बहनोई भाई मोतीलालजी भी दो साल तक या शायद कुछ ज्यादा उनको छात्रवृत्ति देते रहे। यहाँ यह बात जानना ज़रूरी है कि छात्रवृत्ति उन्हें दान के रूप में नहीं मिली थी, उधार थी। चुकाने के लिये कागज लिखा था, शर्त थी कि वह छात्रवृत्ति उस वक्त चुकाई जायगी, जब बाबू दयाचन्द्रजी कमाने लगेंगे, वह १०० रु० के पीछे १० रु० के हिसाब से चुकाई जायगी। कोई यह न समझे कि भाई मोतीलालजी वसूल करने में बड़े कड़े आदमी थे। भाई मोतीलालजी के आगे-पीछे कोई न था। वह अपना रुपया ऐसे ही कामों में खर्च किया करते थे। वह इस तरह दी हुई छात्रवृत्ति को उघाकर कुछ अपने काम में नहीं लाते थे, किसी दूसरे को देनी शुरू कर देते थे। इस तरह उनकी सख्ती चुकानेवाले को भले ही थोड़ी अखरती हो, पर और किसी को नहीं अखरती थी और न हमारे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पढ़नेवालों को अखरेगी। इतनी लंबी-चौड़ी बात हमने यों ही नहीं कही। हमारे कहने की वजह है। बाबू दयाचन्द्रजी के साथ उन्होंने काफी सख्ती की थी। उनकी सख्त चिट्ठी हमने अपनी आँखों देखी थी, उसको पढ़ी थी। बा० दयाचन्द्रजी ने मास्टर होने के कुछ दिन बाद शादी कर ली थी। शादी करने के कुछ दिनों बाद, शायद जबतक बहू की मेंहदी फीकी न पड़ी होगी, यह चिट्ठी दयाचन्द्रजी के नाम ललितपुर में आ धमकी। पूरी चिट्ठी हमें याद नहीं, पर वे लफ्ज हमारे दिलपर ज्यों-के-त्यों अंकित हैं "वजीफे की (छात्रवृत्ति की) रक़म अदा किये बगैर आपको शादी करने का कोई हक न था" यह चिट्ठी उर्दू में थी। भाई मोतीलालजी उर्दू में चिट्ठी लिखा करते, पढ़नेवालों पर ज़रूर यह असर पड़ेगा कि भाई मोतीलालजी बड़े सख्त थे। हम पर उस वक्त ऐसा ही असर पड़ा था, पर बाबू दयाचन्द्रजी ने अपना मन ज़रा मैला न किया, हमसे बोले, उनकी शिकायत ठीक है, सचमुच मुझे बिना रुपया अदा किये ऐसा नहीं करना चाहिए था। यह मुझे ठीक याद नहीं, उन्होंने कोई चीज़ गिरवी रखकर या यों ही मामूली कागज लिखकर उसी वक्त किसीसे रुपये उधार लिये और जितने महीने उन्हें नौकरी करते हुए थे १० रु० फी महीने के हिसाब से मनिऑर्डर से भेज दिये। ये थे बाबू दयाचन्द्र। त्याग पैसे का त्याग नहीं होता, असली त्याग है हृदय की मलीनता का, वही सच्चा त्याग है; बा० दयाचन्द्रजी नौकरी करते और गृहस्थ होते सच्चे त्यागी थे।

हमारी उनसे बहुत एकमेकता थी, जयपुर में हम एक कमरे में रहे थे। हम वहाँ छात्रालय के सुपरिण्टेण्डेण्ट थे और बाबू दयाचन्द्रजी छात्रालय में रहने के नाते एक छात्र थे और हमारे मित्र थे। हमें वहाँ खुजली हो गई, एक अँग्रेजी सफेद ज़हरीली दवा गोले के तेल में घोल कर हमारे बदनपर मलने के लिए डाक्टर ने दी। उसके लिये डाक्टर की हिदायत थी कि इस दवा को जो कोई लगायेगा, अगर उसका एक कण भी मुँह के रास्ते पेट में पहुँच गया तो लगानेवाले के खुजली हो जाने का डर है। यों तो छात्रालय के सभी छात्र हमसे बेहद मुहब्बत करते थे,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर श्रीचन्द्र नामी एक छात्र बहुत मुहब्बत रखता था। छात्रों में से कई दवा लगाने के लिए तैयार हुए वह हमारे मना करनेपर मान गये, श्रीचन्द्र हठ कर बैठा; वह हमारा सब से ज्यादा आज्ञाकारी था; इस मामले में उसने हमारी एक न मानी। दवा गोले के तेल में घोल ही तो डाली, हाथ भिगो लिये। इतने में पंडित अर्जुनलालजी सेठी आ गये। उन्होंने जब फटकारा, तब वह माना। श्रीचन्द्र के होशियारी से हाथ धुलवाये गये और न मालूम और क्या क्या किया गया। यह किस्सा चल रहा था कि बाबू दयाचन्द्रजी आ पहुँचे। सेठीजी ने बहुत रोका, हमने पूरा जोर लगाया पर उनके कानपर जूँ न रेंगी। उन्होंने न जवाब दिया, न बोले, बस पकड़ हमारा हाथ और लगे दवा मलने। दवा मल चुकने के बाद बहुत होशियारी से उन्होंने अपने हाथ धोए, जिसे अगर और कोई देखता तो यही कह बैठता, "जब तुम दवा से इतना डरते हो तो लगाने का शौक क्यों चढ़ आया"। पाठक यह खूब समझ लें, हाथ दवा से डर कर नहीं धोए जा रहे थे, धोए जा रहे थे, दवा लगाने के बाद मुझे खाना खिलाने के लिये। उनको उन्हीं हाथों यह काम करना था। यह सब इस ख्याल से किया जा रहा था। यह थी बाबू दयाचन्द्रजी की प्रेम सेवा। ये सब बातें धर्म-प्रेम बिना नहीं आ सकतीं, और धर्म-प्रेमी सीखना नहीं पड़ती।

२२ जनवरी १९१० को हम गुरुकुल खोलने का व्रत ले चुके थे। अपना जीवन उस काम के लिये सौंप चुके थे, पर अर्जुनलालजी सेठी उस वक्त समाज में गुरुकुल नाम से एक नई संस्था खोले जाने की जरूरत नहीं समझते थे। वह नहीं चाहते थे कि उनकी शिक्षा समिति हमारी सेवाओं से वंचित हो जाय। उनकी तजवीज़ थी कि जयपुर में ही कहीं किसी जगह हमारा व्रत इस तरह पूरा कर दिया जाय, जिस तरह लार्ड कर्जन ने उदयपुर महाराणा की दिल्ली फतह करने की प्रतिज्ञा, मिट्टी की दिल्ली बनाकर कर दी थी। मई से नवम्बर तक हमको सेठीजी इसी तरह टालते रहे। १० नवम्बर १९१० को बाबू दयाचन्द्रजी ने हमें, दरवाजा बन्द करके एक घंटे सारी ऊँच-नीच समझाई। इतना सीधा, खरा और जोश

Ganesh-Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भरा उपदेश दिया कि दूसरे दिन यानी ११ नवम्बर को हम जयपुर से निकल पड़े। १९११ की अक्षय तीज को, यानी छः महीने बाद, गुरुकुल की स्थापना हो गई।

बाबू दयाचन्द्रजी हमारे दोस्त थे। अब तक के हाल से पढ़नेवालों ने समझ लिया होगा कि हमारे साथ उनका कितना अपनापन था, फिर भी वह अपने गहरे-से-गहरे मित्र के साथ खरी बात कहने में नहीं चूकते थे। सच्ची बात, कितनी ही कड़ुवी क्यों न हो, कहते न रुकते। कोई यह न समझ बैठे कि उनका उपगूहन अङ्ग कच्चा था, वे दूसरों की बुराई छिपाकर नहीं रख सकते थे! हर धर्मात्मा का फ़र्ज़ है कि वह दूसरे की बुराइयाँ छिपाये। वह किसी की बुराई किसी दूसरे से न करते। वह उसकी बुराई उसीसे कहते। वह आदत न सुधारे तो उससे अपना संबंध तोड़ लेते। उसकी बुराइयों का कभी गीत न गाते। वह कान के कच्चे थे, इसे यों भी कहा जा सकता है कि वह किसी को झूठा न समझते थे, इसलिए दिल के खरे थे। जो दिल का खरा होता है वह अगर कान का कच्चा हो तो किसी को उससे डरने की जरूरत नहीं।

अब सुनिए, उनका ग्राम भाई, दीपचन्द्र, जो आज कल कहीं किसी मिल में मैनेजर है, सन् १९१२ में हमारे गुरुकुल का ब्रह्मचारी था। लाला गेंदनलालजी का लड़का श्री प्रीतचन्द्र भी हमारे गुरुकुल का ब्रह्मचारी था। होनहार कि, एक दिन दीपचन्द्र के पिता गुरुकुल (ऋषभब्रह्मचर्याश्रम) देखने आये। रात के ९ बजे का वक्त था। जाड़े के दिन थे। सब ब्रह्मचारी लिहाफ़ ओढ़े सो रहे थे। दीपचन्द्र का लिहाफ़ कुछ हलका था। ऐसा था जैसा और बीसियों ब्रह्मचारियों का था। प्रीतचन्द्र का लिहाफ़ भारी था, और लिहाफों से खूबसूरत था। यह सब देख दीपचन्द्र के पिताने हमसे तो कुछ नहीं कहा, बा० दयाचन्द्र को खबर दी और कुछ दिनों बाद बा० दयाचन्द्रजी की बड़ी लम्बी-चौड़ी चिट्ठी, बेहद कड़ुवी, दसियों फटकारों से भरी, हमारे नाम हस्तिनागपुर आ धमकी। धमकियों के साथ सम्बन्ध तोड़ने की धमकी थी, यह सुनकर पाठक हैरान रह जायँगे कि जवाब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं मांगा गया था। यह समझिये, वह हाईकोर्ट का आखिरी फैसला था; पर हमने जवाब देकर उनकी तसल्ली कर दी, उनसे यह चाहा कि वह खुद आकर हमारी बात की जाँच कर लें और देख लें कि हम जो कुछ कह रहे हैं ठीक है या नहीं। लौटती डाक से जवाब मिला, मैं आपकी बात बिल्कुल ठीक समझता हूँ, पर आपने यह क्यों लिखा कि मैं खुद आकर वहाँ उसकी जाँच करूँ। क्या आपको अपने पर विश्वास नहीं? यह थे बा० दयाचन्द्र! कितने खुले दिल, कितने खरे, कितनी मन्द कषाय वाले! अब ऐसे साथी कहाँ नसीब हैं!

बा० दयाचन्द्रजी सिर से पैरतक धर्मात्मा थे, इसलिए सच्चे सुधारक थे। उन्होंने आर्य समाजी लड़की से शादी की, बेकार रस्मरिवाजों को अपनाने के लिए तैयार न हुए। हाँ, एक बार अपनी धर्मपत्नी के कहने से अपने बच्चे के सख्त बीमार होने पर झाड़-फूँक की सिर्फ इजाज़त ही न दी, खुद झाड़-फूँक करनेवाले को बुलाकर लाये। पढ़नेवाले यह न समझें कि वह झाड़-फूँक में विश्वास रखते थे। उन्होंने यह काम सिर्फ अपनी धर्मपत्नी के विचारों में आड़े न आने के लिए किया था। वह ज्ञानी आदमी थे, मनोविज्ञान से वाक़िफ़ थे। वह खूब समझते थे कि माँकी कमजोरी का दुधमुँहे बच्चे पर असर पड़े बिना न रहेगा। इसलिए उनका झाड़-फूँक की इजाज़त देना विश्वास की कमजोरी नहीं, मज़बूती का सबूत है। अगर वह हठ कर जाते तो धर्मपत्नी मान तो जाती पर दुख ज़रूर मानती, वह हिंसा होती।

विधवा-विवाह की आवाज उनसे पहले उठी थी, पर उसमें दम न था। बाबू दयाचन्द्रजीने इस आवाज़ को अपने ढंग से उठाया। वह कुछ उम्र पाते तो इस तरफ़ कुछ ज़रूर कर के दिखा जाते।

हम राजकारन के मैदान में कूद चुके थे। उन दिनों ऐसा करना अपने रिश्तेदारों और अपने दोस्तों की नज़रों में गिरना था। और तो और भाई अजितप्रसादजी को, जो हमारे मारशल्ला के मुक़दमे में हमारे वकील थे, करनाल में ठहरने के लिए जगह मिलना मुश्किल हो गया था। आख़िर एक वकील ने बड़ी हिम्मत कर के उन्हें अपने घर पर ठहराया था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बा० दयाचन्द्रजी राजकारन के मैदान में नहीं आये, पर उन दिनों राजकारन में कूदना भले ही कुछ बड़ा काम हो, पर राजकारन में कूदनेवालों से दोस्ती बनाये रखना और खुले दिल खुल्लम खुल्ला अपने घरमें उनका स्वागत करना यह और भी कहीं बड़ा काम था। इस विचार से हम यह कहेंगे कि बा० दयाचन्द्रजी राजकारन के मैदान में न कूदकर भी राजकारन में कूदे जैसे थे। हमसे मिलने में वह कभी नहीं झिझके, हमारी बातों को ध्यान से और शौक से सुना और हमें सलाह दी। जो सलाह दी वह हमें अपने रास्ते से अलहदा करनेवाली न थी। रास्ते पर मजबूती से डटा रखनेवाली थी।

मामूली घराने का जवान, पूरा गृहस्थी और फिर इतना निर्भीक और निडर; धर्म, समाज और देशप्रेम में भीगा, उसके लिए ज्यादा से ज्यादा वक्त निकालकर हर तरह काम के लिए तैयार, विरला ही कोई होता है।

सचमुच बा० दयाचन्द्र की जिन्दगी ऐसी है जिसका अनुसरण आजकल के जवान करें तो समाज, धर्म और देश के लिए बड़े उपयोगी बन सकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

: ७ :

जुगमंदरलालजी

ठीक सन् नहीं याद, शायद १९१३ और १७ के बीच का हो। जगह के बारे में शक है, हो सकता है सहारनपुर हो, रुड़की रही हो। हम किसी काम से जुगमंदरलालजी से मिलने पहुंचे। जब हम पहुंचे तब वह किसी अंग्रेज अफसर से बातें कर रहे थे। जैसे हम कमरे में पहुंचे उन्होंने फौरन उस अंग्रेज अफसर से अंग्रेजी में कहा 'मैं समझता हूँ मैंने आपका बहुत वक्त ले लिया। अब मैं अपने दोस्त से बात करूँगा।' यह थे हमारे स्वाभिमानी जुगमंदरलाल।

हमारे पढ़नेवाले यह न समझें कि उनके पास वह अंग्रेज मुवक्कल की हैसियत से आया था। नहीं, वह उनका विलायतका दोस्त था। अगर हम गलती नहीं करते तो वह जरूर जिला मजिस्ट्रेट था। सन् १२-१३ में छोटे मोटे राजाकी यह हिम्मत न हो सकती कि अपने किसी बड़े से बड़े दोस्त की खातिर किसी अंग्रेज को बीच में बिदा दे सके।

हमें यह देख, खुद अचरज हुआ। उस अंग्रेज के चले जाने के बाद हमने उनसे पूछा, आपने हमारी खातिर इस अंग्रेज को बेवक्त बिदा करके कोई आफत तो मोल नहीं ली ? वह बोले, नहीं नहीं, मैं बरसों विलायत रहा हूँ, अंग्रेजी स्वभावको खूब पहचानता हूं। मैंने वहां किताबें कम पढ़ीं, अंग्रेजोंका स्वभाव ज्यादा पढ़ा। यह अंग्रेज बुरा नहीं मान सकता, पर, हां, इसके साथ ऐसा बर्ताव कोई और बैरिस्टर करे तो यह उसकी आफत करदे और अगर कोई रईस कर बैठे तो उसका जीना मुश्किल हो जाय। अंग्रेज बेवकूफ नहीं होता। मामूली अंग्रेज आय. सी. एस. का इम्तिहान पास नहीं कर सकता और जो अंग्रेज पास कर लेता है उसे थोड़ा-बहुत मनोविज्ञान आता ही है। वह यह पहचानता है कि किसमें कितना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वाभिमान है। वह किसीके स्वाभिमान से टक्कर नहीं लेता। हर अंग्रेज यह खूब जानता है कि हिंदुस्तान के रईसों में से बहुत कम में स्वाभिमान रह गया है। यही हाल वकीलों और बैरिस्टरोंका है। कोई अंग्रेज सबके साथ एकसा बर्ताव नहीं करता। उसको आदमीको पहचानने में देर नहीं लगती। भगवानदीनजी, हिंदुस्तान में अब स्वाभिमानी लोग नहीं रह गए और अंग्रेज बीन बीन कर उन्हें खतम कर रहा है। इसमें दोष अंग्रेजका नहीं, हम सबका है। मैं स्वाभिमानी हूं, अंग्रेज मेरे स्वाभिमान के ढाने की कभी नहीं सोचता। अंग्रेज स्वाभिमान और स्वाभिमानी की कदर करता है। मैं कई कलेक्टरों से मिला हूं। वह इन बम फेंकनेवालोंकी बड़ी तारीफ करते हैं। उनको वह उन रईसों से बहुत ऊंचे दर्जे का समझते हैं जिनको वह बड़े बड़े खिताब देते हैं। यह दूसरी बात है कि उन बम फेंकनेवालों को उन्हें फांसीपर चढ़ाना पड़ता है, पर फांसीपर चढ़ाते दुख मानते हैं। भगवानदीनजी, यह सुनकर तुम्हें अचरज होगा कि मैं एक ऐसी मेम से मिल चुका हूं जिसके पति को एक बम फेंकनेवाले ने खतम किया था। वह भी यह कह बैठी कि इतनी छोटी उम्र के लड़के जब देश की खातिर हथेलीपर जान लिए फिरते हैं, तब हम लोगों का हिन्दुस्तान में रहना मुश्किल है। उसीका यह कहना था कि हम अंग्रेज, लोगों को खिताब दे देकर गुलामी की याद भुलाए रखना चाहते हैं, पर ये दीवाने तो कुछ चाहते ही नहीं। भगवानदीनजी, अब आप कहिए, मैंने स अंग्रेज को विदा करके कोई आफत मोल ली या कि और इज्जत कमाई? मुझे पक्का विश्वास है कि यह अंग्रेज आजही जाकर अपनी मेम से जिक्र करेगा कि आज मेरे हिंदुस्तानी दोस्तने अपने एक भिखमंगे दोस्त की खातिर मुझे विदा दी। यह खूब समझ लीजिए मैं इस अंग्रेजकी नजरमें गिरा नहीं, उठा हूं। भाई भगवानदीनजी, इसी स्वाभिमान को मैं ढूंढ़ता फिरता हूं और यह हिंदुस्तान में बहुत कम पाया जाता है। मैं इसी के बीज बोना चाहता हूं और जब मैं ऐसा करता हूं तो लोग मुझे घमंडी समझते हैं।

हमने जुगमंदरलाल को ऊपर से देखने की कभी कोशिश नहीं की, हमारी यह आदत नहीं। हमारा विश्वास हो गया है कि अंदर की आग बाहर के ढोंग को रचती तो है ही नहीं, उल्टा जलाती है। हमें कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा देखने को न मिला जो बाहर से धर्मात्मा हो और अन्दर भी धर्मात्मा हो। हम यह नहीं कह रहे कि ऐसे आदमी होते नहीं जो अन्दर बाहर धर्मात्मा हों। हम तो यह कह रहे हैं कि हमारी नजर में नहीं आए। जुगमंदरलालजी के बारे में एक और घटना सुनिए।

इन्दोर में कोई सभा हो रही थी। जुगमंदरलाल उस सभा के सभापति थे। उन दिनों वह इन्दोर हाईकोर्ट के जज थे। उसी सभा में ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी बोलने खड़े हुए। ब्रह्मचारीजी जुगमंदरलालजी के मित्र थे। अगर बुरा न लगे तो हम यह भी कहना चाहते हैं कि कई बातों में ब्रह्मचारीजी जुगमंदरलालजी के शिष्य भी थे। यह ठीक है, जुगमंदरलालजीने कभी अपने आप को ब्रह्मचारीजी का गुरु नहीं माना। हो सकता है, किसी के सामने यह भी कहा हो कि ब्रह्मचारीजी उनके गुरु हैं, पर यही तो जुगमंदरलालजी की गुरुता थी।

हाँ, तो ब्रह्मचारीजी उस सभा में बोले और कुछ ऐसा बेतुका बोले जो उन लोगों पर आक्षेप बन बैठा जो समुंदर पार जाकर विलायत में तालीम हासिल करते हैं। यह सीधे ना सीधे जुगमंदरलालजी पर आक्षेप था। वह अपने स्वाभिमान पर चोट बरदाश्त न कर सकते थे। उनको बरदाश्त करना भी नहीं चाहिए था। वह सभा के सभापति थे। चिंता की बात न थी, सभापति की हैसियत से उन्हें जवाब देने का मौका था। वह चुपचाप सुनते रहे और सब से पीछे जब सभापति की हैसियत से खड़े हुए तो उन्होंने बोलना इस तरह शुरू किया :—

मूड मुडाये तीन गुन, सिरकी मिटती खाज।
खाने को लड्डू मिलें, लोग कहें महाराज।

ब्रह्मचारीजी के ना सीधे आक्षेप को कुछ समझ पाये कुछ नहीं, पर जुगमंदरलालजी के नासीधे आक्षेप को सभा का बच्चा बच्चा समझ गया। फिर क्या आप समझते है जुगमंदरलालजीने उसके बाद कभी कुछ ब्रह्मचारीजी से कहा ? वह बात आई और गई। दूसरे दिन ब्रह्मचारीजी जुगमंदरलालजी के घर पर थे और उसी तरह लिखने का काम चल रहा था, जैसे हमेशा होता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जुगमंदरलालनें नाटक समयसार सिर्फ पढ़ा नहीं, उसका अपने ऊपर अभ्यास किया जैसा गांधीजीने गीता का।

जिसने जुगमंदरलाल को ऊपर से देखा होगा, हो सकता है, वह उन्हें कुछ का कुछ समझ बैठे, पर जिसने उन्हें पास रहकर अन्दर से देखा है वह वैसी भूल नहीं कर सकता।

सिद्धवरकूट में कोई सभा हो रही थी। बाबू सूरजभानजी उप-जाति विवाह पर बोले। उसके जवाब में पंडित गोपालदासजी बोले, न जाने किस सिलसिले में जुगमंदरलालजी पर गन्दे आक्षेप कर गयें। इस से खुश होकर सेठ हुकमचंद उछल पड़े, एकदम गोपालदासजी को खोंफी में भरकर बोले 'वाह रे पंडित', 'वाह रे पंडित'। जिसका यह मतलब था कि सेठ हुकमचंद उन आक्षेपों से सहमत हैं। यह देख बाबू माणिकचंदजी एकदम उठे और स्वागतकारिणी सभा के मंत्री की हैसियत से बोले, यह शोभा नहीं देता कि उस आदमी की जीवनी पर आक्षेप किये जायँ जो सभा में जवाब देने के लिये मौजूद नहीं है। जुगमंदरलालजी न उस सभा में बुलाये गयें थे न उस सभा में मौजूद थे। यह था समाज के खास खास आदमियों का जुगमंदरलालजी का ऊपर ऊपर का अध्ययन। अचरज हमको यह है कि पंडित लोग भी जो पुराणोंको पढ़ते हैं, ठीक ठीक नहीं समझ पाते कि आदमी ऊपरसे कुछ और होता है, अन्दर से कुछ और। किसी आदमी का ऊपर ऊपरका चरित्र देखकर उसके अन्दर के बारे में राय बना बैठना बड़ी भारी भूल है। यहाँ यह सवाल खड़ा हो सकता है कि लाखों आदमियोंमें से किसी एकमें यह योग्यता होती है कि वह किसी को अन्दर से जान सके, बाकी आदमी बाहरसे ही पहचानते हैं, बाहर से उनको काम पड़ता है, फिर वह बाहरी चरित्र को देखकर अपनी राय न बनावें तो क्या करें?

सवाल बिलकुल सीधा सादा है। इसका जवाब भी इतना ही सीधा सादा है। बेशक अन्दर से हमें क्या लेना देना, हमें बाहरसे काम पड़ता है बाहर ही देखेंगे और बाहर के आधार पर ही अपनी राय बनायेंगे। हम जुगमंदरलालजी के बारे में यही कहना चाहते हैं। हमें कोई ऐसा न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिला जिसने जुगमंदरलालजी के बारे में यह शिकायत की हो कि उन्होंने मेरे साथ यह बुराई की। पंडित गोपालदासजीने जो बात जुगमंदरलाल के खिलाफ सिद्धवरकूट के प्लेटफॉर्म से कही उस में पंडित गोपालदास को जुगमंदरलाल से अपनी कोई शिकायत न थी, उन्होंने जो कुछ कहा वह सुनी हुई बातें थीं, उस में कुछ विलायत की थीं। एक आदमी नई शादी करता है और इस नाते वह बहुत वक्त अपनी औरत के साथ बिताता है, लेकिन अगर वह सब काम छोड़कर अपने दोस्तों से मिलता है और पहले से ज्यादा खातिरदारी करता है तब किसी दोस्त को यह शोभा नहीं देता कि वह अपने उस नए शादी करनेवाले दोस्त को स्त्री-भक्त कहकर चिढ़ाए, और यह समझे कि वह बिगड़ गया है। जुगमंदरलालजी के बारे में हमने लोगों से जितने आक्षेप सुने वह सब के सब लचर और पोच मिले। उन्हीं लोगों के मुंह से सुनने को मिले जिन में से बहुतों ने तो उन्हें कभी देखा भी न था, कुछ ने दूर दूर से देखा था। बाकी में से भी किसीने उन्हें बहुत पास से नहीं देखा।

हम चार-पाँच ऐसे आदमियों से परिचित हैं जो आज जीवित हैं। वह जुगमंदर लालजी को पहले बहुत बुरा समझते थे, पर जब उन के बिलकुल सम्पर्क में आए तो उन्हें साधु बताने लगे। हमारे सामने उनके इस तरह गुण गाने लगे मानों जुगमन्दरलाल कोई देवता हो।

जुगमन्दरलाल जब भी किसी से मिलते थे दिल खोलकर मिलते थे। उनकी नजर कभी आदमी के ऊपरी बर्ताव पर नहीं पड़ती थी। किसी के ओढ़ावे-पहनावे से उन्हें कोई सरोकार न था। उनका सम्बंध मन और आत्मा से रहता था। वह अपने हर मिलने वाले को यही चाहते थे कि वह दुनिया में ऊंचे से ऊंचा आदमी हो सके और अपने ऊपर ऐसा ही काबू पा सके जैसा अबतक कोई भी पाता रहा है। वे तुलसी के 'सब से मिलिये धाय' के सच्चे नमूने थे। तुलसी का दोहा यह है—

तुलसी या संसार में, सब से मिलिए धाय।
ना जाने का रूप में, नारायण मिलि जाय॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जुगमन्दरलालजी सचमुच बेहद मिलनसार थे। शायद ही कोई ऐसा हो जो उनसे मिला हो और फिर उनका भक्त न बन बैठा हो। उनका जैसा मिलना हमने समाज भर में एक ही में और देखा, वह था पं० गोपालदासजी में। दोनों में अन्तर था। पंडित गोपालदासजी दिगम्बरी थे। जुगमन्दरलालजी दिगम्बरत्व से ऊँचे उठ गए थे। वह नामधारी धर्म की सीढ़ी पर पांव रख कर सार्वधर्म को ताक रहे थे। मरते दम तक उनकी यह अजीब इच्छा रही कि जिस नामधारी धर्म में उन्होंने जन्म लिया है उसी धर्म को सार्वधर्म का रूप दे दें। इसमें शक नहीं कि हर नामधारी धर्म शुरू के ग्रन्थों में और बहुत ऊँचे ग्रंथों में सार्वधर्म का रूप लिए हुए मिलेगा। पर जुगमंदरलालजी की इतने से तसल्ली न थी। उनकी एक अजीब कोशिश थी। वह यह कि जिस धर्म में उन्हों ने जन्म लिया उस धर्म के सब आर्ष नाम से पुकारे जाने वाले ग्रंथों को वह ऐसा रूप दें कि वह रूप सार्वधर्म से मेल खा जाय। अगर उन्होंने ऐसा न किया होता और उन्होंने अपनी बुद्धि स्वतन्त्र विचारों के लिखने में लगाई होती तो वह मनुष्य समाज के लिए बहुत बड़ी चीजें छोड़ जाते।

हम जब जब उनसे मिले तब तब उन्होंने कृष्ण भगवान के जीवन पर ऐसी ऐसी अनोखी बातें बताई कि हम दंग रह गए। अगर उन दिनों आज जैसे हमारे विचार होते तो हम जरूर उन्हें इस तरह सोचने से रोकते और उनको अपनी बुद्धि स्वतन्त्र लिखनें में लगाने के लिए प्रार्थना करते। इससे कुछ मिलती जुलती पर नीचे दरजे की इच्छा बैरिस्टर चंपतराय में थी। ऐसी इच्छा हर धर्म वाले में पाई जाती है। इस इच्छा की तह में ऐसे ही एक लोभ रहता है जैसे चुनाव में वोट हासिल करने के लिए हिन्दुस्तानियत से उतरकर किसी जात का बन बैठना। इस लोभ से कुछ वोट मिल जाते हैं। ठीक इसी तरह धर्म के लोभ से उन विचारों के पढ़नेवाले मिल जाते हैं जो वैसे न मिलते। लोकमान्य अपनी गीता रहस्य का नाम ज्ञान रहस्य रखते तो शायद इतनी कदर न होती जितनी गीता रहस्य रखने से। ठीक यही बात जुगमंदरलालजी में थी। यह यों तो बड़ी अच्छी बात है, पर सर्वधर्म की अपेक्षा ज्यादा अच्छी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं। जुगमंदरलालजी जिस समाज और धर्म में कार्य कर रहे थे उस समाज के लिहाज से उनका काम हर तरह बढ़िया और ऊँचा था।

जुगमन्दरलालजी स्वाभिमानी थे, पर अभिमानी नहीं। उनका विद्यार्थी जीवन इस बात का सुबूत है। वह अपनी परीक्षाओं में अच्छे नम्बर से पास होते थे, छात्रवृत्तियां पाते थे। और अपनें साथी विद्यार्थियों से इतने हिलमिल कर रहते थे कि किसी को शिकायत का मौका नहीं मिलता था। जिसे विद्या-मद कहते हैं वह उनमें था तो, पर न उन्हें सताता था और न किसी को सताने की प्रेंरणा करता था। यह ठीक है, उन्होंने बैरिस्टरी का इम्तहान पास किया, पर वह एक सफल बैरिस्टर की जगह सफल जज ही रहे, क्यों कि विद्या विवाद के लिए है, यह कहावत उनपर लागू नहीं होती। बैरिस्टरी उनको पास करनी पड़ी। अगर उनकी टांग को चोट न आई होती तो वह कोई दूसरा रास्ता अख्तियार करते। किस्मतने उनको बैरिस्टर बनाया, पर किस्मत उनपर अधिकार न जमा सकी। विद्यार्थी अवस्था के बारे में जुगमंदरलालजी ने हमें दो-चार बातें ही बताईं पर अपनी अध्यापकी, बैरिस्टरी और जजी के बारे में उनका खयाल था कि वह काम उन्होंने इसी तरह किए जैसे नाटक में नट अपने सुपुर्द किए काम करता है। जल में कमल की तरह रहने का अभ्यास उन्होंने अपने अध्यापकी के समय से किया और मरने से दो-तीन बरस पहले वह उस रास्तेपर बहुत दूर जा चुके थे।

विद्यार्थी जीवन में उनमें एक खास बात थी और वह यह कि जब भी उनको कोई नई बात सूझती वह अपने सब साथियों को बता देते। एक से ज्यादा बार ऐसा हुआ कि उनकी सोची हुई बात का फल उनको मिलने की जगह उनके साथी को मिला। उनका कहना था यह ठीक है, उन्होंने कभी इस बात का जिक्र न कालेज में किया न बाहर, पर उन्हीं का यह भी कहना था कि यह छोटी छोटी बातें जो अब तक मुझे याद हैं कांटे की तरह खटकती हैं। मैं भुलाने पर भी इन्हें भुला नहीं पाता और यही मेरी कमियां हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्हें अपनी कमियों को देखने का अभ्यास विद्यार्थी-जीवन से शुरू हो गया था, जब वह उस जीवन की सुनाने बैठते, तो उनकी आँखें छल-छला आतीं। वह हम से जब भी मिले इस तरह दिल खोलकर मिले मानों वह चाहते हों कि अपना दिल हमारे दिल में धर दें। उनका विद्यार्थी जीवन बहुत सुखमय बीता। यह सुनकर आप को ताज्जुब होगा कि जब तक वह विद्यार्थी रहे उनके सब सहपाठी उनके बड़े दोस्त रहे पर कालिज छोड़ने के बाद वह उन सहपाठियों से ऐसे अलग हो गये मानों कुछ था ही नहीं। अगर विद्यार्थी जीवन में उन्होंने इस तरह का अभ्यास न किया होता तो वह उस तरह का जीवन न बिता सकते जिस तरह का बिता रहे थे। जो आदमी जल में कमल की तरह रहना जानता है वह आक्षेप बरदाश्त करने में बहुत पक्का होता है और जो आक्षेप बरदाश्त करने में पक्का होता है वह बदला लेने की नहीं सोचता और जो बदला लेने की नहीं सोचता वह वही होता है जिसकी क्रोध-मान-माया-लोभ कषायें बहुत दर्जे तक उसके काबू में होती हैं। जिस आदमी ने अपना विद्यार्थी जीवन इस खूबी के साथ बिताया हो, उसके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं कि वह परीक्षा में ऊँची जगह हासिल करे। विद्या हरएक को मिल सकती है, पर ज्ञान हरएक के हिस्से में नहीं आता। विद्या मेहनत से कमाई जा सकती है। ज्ञान का मेहनत से कोई सम्बन्ध नहीं। ज्ञान का सम्बन्ध ऋजुता और सरलता से है। अगर जुगमन्दरलालजी सरल स्वभाव और मंद कषाय न होते तो जो जगह उन्होंने कालेज में बनाई थी वह न बना पाते।

विद्यार्थी-जीवन की तरह उनका अध्यापकी जीवन बड़े आनंद का रहा। उनका कहना था कि वह अपने विद्यार्थियों में इतने हिलमिल जाते थे कि कालेज से बाहर शायद ही कोई यह पहचान सके कि वह जिस विद्यार्थी से बात कर रहे हैं उसके वह अध्यापक भी हैं। पर कालिज में वह एक दूसरा ही रूप ले लेते थे। वह रूप कुछ डरावना नहीं होता था, पर ऐसा जरूर होता था मानों उनमें से कोई चीज निकलकर विद्यार्थियों की तरफ दौड़ी जा रही है। इस सब का यह नतीजा होता था कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्यार्थी और अध्यापक में निकटता आने पर भी कोई ऐसी बात न हो पाती थी जिस से दोनों में से किसी के स्वाभिमान को धक्का लगे।

जुगमन्दरलालजी का कहना था, अध्यापक के जीवन से मुझे कुछ मोह हो गया था। पर छात्रालय का प्रबन्ध मुझे अखरता था। क्योंकि उसमें मुझे ऐसा मालूम होता था कि मेरे पास छात्रों के लिए कुछ देने के लिए है ही नहीं। यह एक ऐसी खटक थी जिसकी वजह से अध्यापकी के जीवन का मजा कुछ कम हो जाता था। यह काम उन्होंने तीन वर्ष से ज्यादा किया नहीं।

आक्सफोर्ड के जीवन का हाल सुनाते वह कभी थकते न थे। वह उसमें इतने तन्मय हो जाते थे कि अपने को भूल जाते थे। अपने अंगरेज सहपाठियों का इतना गुणगान करते थे कि कभी कभी हमको अखरने लगता था। हमें अखर रहा है, इसको वह फौरन ताड़ जाते थे। वह कहने लगते 'भगवानदीनजी, तुम्हारी नजरों में हैं यहां के अंगरेज जो हिन्दुस्तान की जमीन पर कदम रखते ही कुछ के कुछ बन जाते हैं और कुछ के कुछ बना दिए जाते हैं। यहां के रईसों और अमीरों ने देखा है नवाबी जमाना या देखी हैं हिन्दू रियासतें। अगर इन्होंने कभी विलायत जाकर अंगरेजों का जीवन देखा होता तो यह अंगरेजों से इस तरह न मिलते जिस तरह आज कल मिलते हैं। यह तीन कौड़ी के अंगरेज को लाखों रुपए का बना देते हैं। इसमें कुसूर अंगरेज का है या हिन्दुस्तानियों का? मजाल है कोई बड़े से बड़ा अंगरेज मेरे साथ इस तरह का बर्ताव करे जैसा वह यहां के रईस से करता है और फिर मुझ से यह आशा रखे कि मैं उसको शकल दिखाऊंगा, या उसकी शकल देखना पसंद करूंगा?' यह कहते कहते वह बोल उठे, 'आप यह न समझें कि मुझ में तीव्र कषाय है, यह तो मैं कहने के लिए कह रहा हूं, यह बात मुझ से मेरी वह हिम्मत कहलवा रही है जिसे यह पूरा भरोसा है कि उसके रहते कोई अंगरेज मेरे साथ उस बेहूदगी का बर्ताव नहीं कर सकता जो वह आम तौर से यहां के रईसों के साथ कर बैठता है। अंगरेज जिस तरह की जिंदगी हिन्दुस्तान में बिता रहा है ऐसी अगर इंग्लिस्तान में बिताए तो उसका जीना मुश्किल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो जाय। हिन्दुस्तानी खुशामद करना जानते हैं और खुशामद चाहते हैं, गुलामी करना जानते हैं और गुलाम रखना जानते हैं। चापलूसी करना जानते हैं और चापलूसी सुनने के आदी हैं। यही सब बातें वह अंगरेजों को सिखा देते हैं। पर, भगवानदीनजी, क्या आप इसे अंगरेज का कमाल नहीं कहेंगे, कि वह विलायत के लिए जहाज पर कदम रखते ही अपनी सारी हिन्दुस्तानी आदतों को ऐसे झड़क डालता है जिस तरह बत्तख अपने पीठ पर के पानी को।'

जुगमन्दरलालजी का यह कहना था कि अंगरेजों में दो ऐब बहुत जबरदस्त हैं। एक अपने रस्म-रिवाजों से बेहद मोहब्बत, दूसरे अपने देश और अपनी हुकूमत को सब से बड़ा और सब से बड़ी समझना। इन मामलों में वह कभी कभी अपनी अकल खो बैठते हैं और इसकी वजह से वह दूसरे मुल्कवालों को नीचा और अपने को ऊँचा समझने लगते हैं। पर यह ऐब तो थोड़ा बहुत सभी देशवालों में है। इसलिए अगर यह ऐब ऐबों से काट लिए जायें तो अंग्रेज के हिस्से में कुछ गुण ही बचे रहते हैं। हमारे चेहरे पर सवाल उठता हुआ देखकर वह बोल उठे कि हां मैं जानता हूं अंग्रेज कई बातों में हिंदुस्तानियों से बहुत पीछे हैं, पर वह उन गुणों को लेने से कब इन्कार करते हैं? वह हर धर्म की अच्छी बातें सुनने और अपनाने के लिए हमेशा तैयार मिलेंगे। और यह सब मैंने आक्सफोर्ड में रहकर अच्छी तरह से अध्ययन किया। बस अंगरेज में यही बड़ा ऐब है कि वह दबते को और दबाता है और इस ऐब की बाकायदा तालीम इंग्लिस्तान की हर युनिवरसिटी में दी जाती है। अंगरेज का यह खयाल है कि दबने पर आदमी उभरता है और अगर उभरना नहीं जानता तो उसे दबाए रखना चाहिए। थोड़ा बहुत यह काम हर देश में चल रहा है। ब्रिटानिया आज हिंदुस्तानपर हुकूमत कर रहा है इसलिए उसका यह ऐब चमक उठता है, अगर हम इंग्लिस्तानपर हुकूमत कर रहे होते तो शायद हम भी ऐसा ही करते। फिर भी, भगवानदीनजी, आक्सफोर्ड का जीवन ऐसा जरूर है कि वहां से आदमी लेना चाहे तो बहुत कुछ ऐसा ले सकता है जो जीवन के लिए बड़ा उपयोगी हो सके। मैंने बहुत कुछ वहां से लिया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैरिस्टरी में उनकी पूरी रुचि न थी। इसलिए उनको वह सफलता न मिल पाई जो मिलनी चाहिए थी। जजी, बैरिस्टरी से भले अच्छी रही हो, उनके रुचि के अनुकूल न थी। यह ठीक है, उन्होंने बैरिस्टरी की हैसियत से कभी किसी अपने मुवक्किल को यह कहने का मौका न दिया कि वह अपना काम जी से नहीं कर रहे थे और न जजी की हैसियत से कभी किसी को यह मौका दिया कि कोई उनकी तरफ उंगली उठा सके। पर यह सब काम वह कर्तव्य समझकर करते रहे। इससे लगाव न था। वह इस धुन में थे कि कोई पचास लाख रुपया लगाकर एक युनिवरसिटी खोल दे और वह उस की मदद से दस बीस या सौ-दोसौ ऐसे आदमी तैयार कर दें जो जल में कमल की तरह रहना जानते हों और अपने जीवन का दूसरोंपर असर डाल सकें। यह इच्छा वह अपने साथ लेकर मर गए और जो थोड़ा बहुत रुपया उन्होंने इकट्ठा किया वह उन्हीं के लिए छोड़ गए जिनसे उन्होंने कमाया था। बैरिस्टरी और जजी उनके रास्ते में आ गईं, उनका आदर्श न थीं।

जुगमंदरलाल ने थोड़ी बहुत साहित्य सेवा भी की पर उसकी तह में इतना सेवा का भाव न था जितना एक खास उद्देश्य को पूरा करना। जिस उद्देश्य से उन्होंने सेवा की उसमें वह सफल भी हुए। पर उस सफलता से उन्हें कोई आनंद न मिला।

उनके जीवन की एक ही बात ऐसी है जिसके बारेमें हम उन से बात नहीं कर पाए और हम नहीं समझते उन जैसे स्वभाव के आदमी ने यह काम क्यों अपनाए। हो सकता है उनके कुछ जानकार उन बातों के बारे में कुछ प्रकाश डालें पर उससे हमारी तसल्ली न हो सकी। हमारी तसल्ली तो तभी होती जब वह खुद हम से मिले होते और उन्होंने अपना दिल खोलकर हमारे सामने रखा होता। वैसा अवसर न उन्हें मिला और न हमें। हम अपने ढंग के राजकाजी कामों में लगे रहे, वह अपने ढंग के। वह दो काम उनके थे एक ऑनररी असिस्टेंट कलेक्टरी और दूसरा अमन सभा की मेंबरी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह दोनों काम उन्होंने किस तरह निभाए यह भी हमको पता नहीं। हमारा मन तो यही कहता है कि यह काम जबर्दस्ती उनके सिर पड़े होंगे। पर वही मन यह मानने को तैयार नहीं कि वह इतने कमजोर थे कि जबर्दस्ती झुक जाते। हम यह मानने के लिए हर्गिज तैयार नहीं कि उनकी मर्जी के खिलाफ सरकार उनसे काम ले सकती थी। हो सकता है उन्होंने खुद उन कामों में देश की भलाई समझी हो पर इस बात को हमारा मन स्वीकार नहीं करता। यह काम इतनी चालाकी से भरे हुए हैं कि उन जैसा सरल आदमी इतनी चालाकी की बात नहीं सोच सकता। इसलिए हम चुप रहना ही ठीक समझते हैं।

ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी से उनका बहुत मेलजोल था पर हमारे पढ़नेवाले यह खूब समझ लें कि ब्रह्मचारीजी का आत्मा जुगमंदरलालजी की आत्मा को कुछ नहीं दे सकता था। हाँ, जाने अनजाने ब्रह्मचारीजी की आत्मा ने जुगमंदरलाल की आत्मा से बहुत कुछ पाया। ब्रह्मचारीजी कट्टर दिगंबरी थे जब कि जुगमंदरलालजी सार्वधर्मी थे। यह दूसरी बात है कि उमर भर उनकी कोशिश एक धर्म विशेष के अनुयायियों को उदार बनाने में लगी रही। उनके लिए यही ठीक था। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपनी एक सीमा बांध कर काम करते हैं। वह सीमा के बाहर तभी जाते हैं जब यह देख लेते हैं कि अपनी सीमा के अन्दर का काम जितना उन्होंने फैलाया है वह उनके इशारे पर चल सकता है। उनके चौबीसों घंटे मदद की अपेक्षा नहीं रखता। गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन के समय रियासतों को कभी नहीं छेड़ा। फौजों को भड़काने की बात तो जीते जी कभी नहीं सोची। इसका यह मतलब नहीं कि वह यह दोनों बातें नहीं चाहते थे। ठीक इसी तरह जुगमंदरलाल के जीवन से कोई यह पाठ न ले कि वह किसी धर्मविशेष के उपकार के लिए हमेशा के लिए बंध बैठे। जुगमंदरलालजी के जीवन से पाठ तो सर्व धर्म का ही लेना चाहिए। पर सेवा का काम अपनी सकत के अनुसार करना चाहिए। अब पढ़नेवाले खुद सोच सकते हैं कि क्या जुगमंदरलालजी ब्रह्मचारीजी से कट्टरता सीखते? हाँ, ब्रह्मचारीजी ने उनसे उदारता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जरूर ली तभी तो वह अपना जीवन अन्त होने से पहले विधवा-विवाह का काम उठा सके। किसी हद तक धर्म के नाम पर जो पंथ बन बैठे थे या जो आम्नाएँ चल पड़ी थीं उनके खिलाफ हलकी आवाज उठा सकें। ब्रह्मचारीजी गेरुएँ रंग के कपड़े पहनते थे। अगर गेरुआँ रंग किसी खास खूबी की निशानी है तब हम कहेंगे कि जुगमंदरलालजी का आत्मा गेरुएँ रंग के कपड़े पहने हुए था। जुगमंदरलाल साधु थे पर उन्होंने न कभी अपने को साधु कहा और न उनको कहने दिया जो उन्हें ऐसा समझते थे। किसका साधु और किसका ज्ञानी, जुगमंदरलाल तो जब भी हमसे मिले तब उन्होंने अपनेको असाधु और अज्ञानी ही कहा; यही उनकी साधुता थी यही ज्ञानीपन था। उनको अपनी असाधुता और अपने अज्ञान का पता था। ब्रह्मचारीजी में जो उदारता थी उसकी पंचानवे फी सदी देन जुगमंदरलाल की है और पाँच फी सदी अजितप्रसादजी की। अजितप्रसादजी में कट्टरता न थी, आम्नाय से बेजा मुहब्बत थी, जुगमंदरलालजी में कुछ न था। वह सर्वधर्मी थे और धर्मविशेष की सेवा ऐसे कर रहे थे जैसे किसी जनरल को फौज की एक टुकड़ी दे दी जाय और वह उसीको सिखाए।

जुगमदंरलाल धर्म ग्रंथोंको पढ़ने में कोई कमी न रखते थे। वह बहुत गहरे जाते थे। उनकी मान्यता थी कि सर्वज्ञता तो क्या, कोई ऊँचे दर्जे का विद्वान भी झूठ नहीं लिख सकता। उनका खयाल था कि ग्रंथों में जो ऐसी बातें हैं जो आज के विज्ञान से मेल नहीं खातीं, उनमें अपने ढंग की सचाई जरूर है। उदाहरण के लिए नरक की सात भूमियाँ मानी गई हैं। जैसे रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा और महातमप्रभा। जो वर्णन इनका पुराने टीकाकारोंने किया है वह आज के विज्ञान से बिलकुल मेल नहीं खाता और आज का कॉलिज का पढ़ा हुआ लड़का उसे एकदम झूठ कह बैठेगा। जुगमंदरलालजी इसके खिलाफ थे। वह पुराने ग्रंथों को ऐसा रूप देना चाहते थे जो आज के विज्ञान से मेल खा जाय। एक बार वह हमको इन्हीं नर्क भूमियों के बारे में समझाने लगे। उन्होंने क्या समझाया यह तो हमें ठीक ठीक याद नहीं रहा, पर इतना जरूर याद है कि उन सब भूमियों का मेल उन्होंने आज के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूगर्भशास्त्र से ठीक ठीक मिला दिया था, हमारी तसल्ली कर दी थी। आज तो शायद हमें उस बात पर हँसी आजाती, ठीक इसी तरह दो चन्द्रमा और दो सूरज को उन्होंने हमें यों समझाया था कि आज भी ज्योतिषी दो चन्द्रमा और दो सूरज मानते हैं जिनका नाम है, उत्तरायण और दक्षिणायन। इस से हमारी तसल्ली हो गई थी। पर इस बात की याद आकर आज हमें हँसी आ जाती है। क्योंकि चन्द्रमा सूरज की तरह उत्तरायण दक्षिणायन होता तो है पर महीने में दो बार हो जाता है जब कि सूरज साल भरमें दो बार, फिर यह खींचातानी के अर्थ हैं। विद्वानों को जब पुराने ग्रंथों से मोह हो जाता है, वह अपनी बुद्धि का उपयोग इसी प्रकार करने लगते हैं। लाहोर के मशहूर गुरुदत्त विद्यार्थी हुए हैं। उन्होंने वेद के शब्दोंपर अंग्रेजी में एक व्याख्या लिखी है, उसमें भी खींचातानी के अर्थ हैं। जब हम पच्चीस वर्ष के थे तब हमने उसको पढ़ा था। बड़ा अच्छा मालूम हुआ था। फिर बावन वर्ष की उमर में पढ़ा तब उस पर हँसी आने लगी। विद्यार्थीजी ने अन्त में अपने आप लिखा है कि कोई यह न समझे कि मैं खींच-तान कर मानें कर रहा हूं, वास्तव में यही माने हैं। यह पढ़कर हमें और हँसी आ गई। ठीक इसी तरह जुगमंदरलालजी की कोशिश थी कि वह अपनी सारी बुद्धि का उपयोग इस काम में करें कि पुराने ग्रंथों का मेल आज के विज्ञान से बिठा दें पर न उनको इतनी उम्र मिली और न इतना समय मिल पाया। उनका यह काम समाज के लिए उठते हुए जवानों के लिए और नए समय के लिए कहाँ तक ठीक होता यह कहना जरा मुश्किल है।

जुगमंदरलालजी साहित्य सेवी थे। ऊँचे दर्जे के साहित्य सेवी हो सकते थे पर उम्र ने उनका पूरा साथ न दिया। अंग्रेजी पर उनको पूरा अधिकार था। अंग्रेजी गज्रट के वह संपादक रहे। उसका अच्छी तरह संपादन किया।

यंगमेन एसोसिएशन ने जब महामंडल[1] का रूप लिया तब जुगमंदर-लालजी उसमें काम करते थे। उनकी वजह से मंडल ने रंग बदला। सन्

---

१. भारत जैन महामंडल, १९१०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११ की अगनी बैठक में जुगमंदरलाल के सभापतित्व में ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम को नींव पड़ी। उस आश्रम पर जुगमंदरलाल की बड़ी निगाह थी और कई बार उन्होंने हम से यह इच्छा प्रकट की कि अगर समाज उनका साथ दे तो वह अपनी सेवाएँ पूरी तौर से उसी आश्रम को दे सकते हैं और उसे बहुत जल्दी युनिवरसिटी का रूप मिल सकता है। पर वह मालवीयजी जैसे स्थिति पूजक नहीं थे। सुधारक वृत्ति के थे इसलिए वह समाज से इतना धन इकट्ठा नहीं कर सकते थे जिसे पाकर वह अपनी इच्छाओं और विचारों को अमली जामा पहना सकें। वह विचार वहीं मुरझाकर रह गए।

जुगमंदरलालजी के जीवन से एक बड़ा जबरदस्त पाठ लिया जा सकता है। पर उस पाठ के लेने के लिए मामूली आत्मा नहीं चाहिए। बहुत जबरदस्त आत्मा उनके तरीके से लाभ उठा सकता है। स्वामी राम जिस तरह अपने जीवन के साथ खेल करते थे और खेल खेल में जिस तरह वह जान दे बैठे उसी तरह जुगमंदरलाल अपने चरित्र से खेल खेलते थे। वह जानबूझकर ऐसे काम कर बैठते थे, जिन्हें उनकी देखा देखी कोई कर बैठे तो न दीन का रहे न दुनिया का। पर जहाँ तक हमारा अनुभव है उन्होंने कभी ठोकर नहीं खाई। उनमें वह कमाल था कि वह उस कमरे में बैठकर वीतराग देवता का निर्विकार होकर ध्यान लगा सकते थे जिस कमरे में चारों ओर नारियों की नग्न तसवीरें टंगी हुई हों। इस बात का कभी उन्होंने अभिमान नहीं किया, किसी से कहते भी नहीं फिरते थे। वह अपनी जांच करते थे, तजर्बे करते थे और उन्हीं को नोट करते जाते थे। वह अपने पीछे अपने अनुभवों की डायरी छोड़ गए। वह पढ़ने की चीज है। हो सकता है कुछ लोगों की यह राय हो कि वह लंगोटी के कच्चे थे पर हम अपने अनुभव के आधारपर कहते हैं कि उन जैसा लंगोटी का पक्का शायद ही कोई समाज में और हो। अजितप्रसादजी उन तक पहुँचने की कोशिश में थे पर पहुँच नहीं पाए। अजितप्रसादजी और जुगमंदरलालजी की लंगोटियों में यह अन्तर था कि अजितप्रसादजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की लंगोटी में प्रतिज्ञा का कमरबंद था इसलिए वह बेफिक्र थे और पैंतालीस बरस की उम्र में विधुर हो जाने से उनका रास्ता और भी आसान हो गया पर जुगमंदरलाल की लंगोटी में प्रतिज्ञा का कमर बंद छोड़ प्रतिज्ञा का कच्चा धागा भी नहीं था। उन्होंने तो अपने मनको इस ढंग का बना लिया था जो प्रतिज्ञा के किले में रहना अपने शान के खिलाफ समझता था। जुगमंदरलाल का मन किले बांधना कायरता का काम समझता था। उनका सुगठित और अप्रतिज्ञ मन किसी दृढ़ प्रतिज्ञ से टक्कर ले सकता था और विजयी हो सकता था। अब कहिए समाज में कौन ऐसा जवान है जो इस तरह की जोखम उठाए और दुनियादारी के सागर को बिना कपड़े भिगोये पार कर जाय।

यह कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें हम ज्यादा खोल कर नहीं लिखना चाहते क्यों कि अभी हिंदुस्तानी समाज इन मामलों में इतना ऊंचा नहीं उठ पाया जितना युरोपीय समाज। आजादी के बाद से इस तरह के मामलों में थोड़ी बहुत उदारता आई है पर अभी तो ऊंचा उठने की जगह उच्छृंखलता की वजह से उसके कुछ नीचे गिरने का ही भय है।

जुगमंदरलालजी ने इस बारे में जो परीक्षण किए वह हरएक आदमी के लिये नहीं हैं और यह वह खुद भी जानते थे इसलिए वे अपने परीक्षणों की बात अपने साथ ही ले गए। फिर हम भी क्यों बे मतलब उनको दूसरों तक पहुँचाने की कोशिश करें।

जुगमंदरलाल में अपनों से मोह था। पर यह बात कहते हुए हमारी तसल्ली नहीं हुई। उनका मोह जिस तरहका था उसको बतानेके लिए हमें भाषा में कोई शब्द नहीं मिलता। राग हम उसको कहना नहीं चाहते, प्रेम नाम देते हिम्मत नहीं होती अब कहें तो क्या कहें। बस यही समझना चाहिए जिससे उनको राग, प्रेम या मोह जो कुछ भी था वह उतनी देर के लिए था जितनी देर वह उससे एकमेक हैं। अगर एकमेक नहीं हैं तो वह सब खतम। इस राग की कमी की वजह से उन्हें अपने कर्तव्य पालन में बड़ा सुभीता होता था। यही कारण था कि वह मौत के लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसे तैयार रहते थे मानों वह यह समझे हुए हैं कि अभी यमदूत उन्हें लेने आने को हैं। इस तरह का गुण हमें सेठ जमनालाल बजाज में मिला। वह भी मौत से न डरते थे। स्वामी राम इस कोटि में नहीं आते, वह तो मौत को बगल में दबाए फिरते थे। जुगमंदरलालजी ने कभी जान-बूझकर मौत की बात नहीं सोची, वह उसे कायरता मानते थे।

जुगमंदरलालजी का हमें विस्तृत जीवन नहीं लिखना है। वह इस योग्य हैं जरूर कि उनका विस्तृत जीवन लिखा जाय पर यह बात न हमारे मन में है और न आगे भी ऐसा करने का खयाल है।

हम उनकी मृत्यु के बारे में कुछ विस्तार से लिखते पर उसको हमने अपनी आँखों नहीं देखा। फिर भी हमारा यह अनुमान है कि ऐसे आदमी की मौत बहुत शांत होनी चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

: ८ :

वीरचंद गांधी

जैसे सूरज को दिखाने के लिये दीपक या किसी और चमकदार चीज की जरूरत नहीं होती वैसे ही दुनिया में कुछ आदमी ऐसे होते हैं जिनका परिचय देने के लिये जरूरी नहीं कि वह किस जगह पैदा हुए, उनके माता-पिता का क्या नाम था और किस धर्म को मानते थे। पर आजकल का रिवाज है कि ग्रहण के वक्त सूरज को देखने के लिए भी अपनी अपनी टेलिस्कोप बगल में दबाकर लोग भागते हैं क्योंकि सूरज को वह नंगा नहीं देख सकते। हम भी थोड़ी बहुत ऐसी बेवकूफी उन वीरचंद गाँधी के बारे में करेंगे जिनको अमेरिका में सन् १८९४ में अमेरिकावालों ने अपने देशवासियों को हिंदू और हिन्दुस्तानी कहकर परिचय कराया था।

वीरचंद गांधी उन्नीसवीं सदी की पैदाइश थे। हिन्दुस्तान को गुलाम हुए पूरे छत्तीस बरस बीते थे। अभी तक इस देश में ऐसे आदमी जीवित थे जिन्हें देश की गुलामी छू न पाई थी तभी तो वह अमेरिका के मेसॉनिक टेम्पिल में एक दिन खड़े होकर अमेरिका वासियों से उस विषय पर चर्चा कर बैठे जिसके बारे में यह कहा जाता है कि उस विद्या का जन्मदाता यूरोप है जिसे हिप्नाटिज्म नाम से पुकारा जाता है।

कितना आकर्षण रहा होगा उस वीरचंद राघवजी गांधी में जिस वक्त मेसॉनिक टेम्पिल में हिप्नाटिझम पर बोलते हुए अुनने लोगों से कहा कि कमरे की बत्तियाँ हलकी कर दी जांय और जैसे ही हलकी हुई कि उस सफेद कपड़े धारी हिन्दुस्तानी की देह से अेक आभा चमकने लगी और उसकी पगडी अैसी मालूम होने लगी मानों उस आदमी के चेहरे के पीछे कोई सूरज निकल रहा हो और जिसे देखकर अमेरिका वासियों का कहना था कि वह उस आभा को न देख सके, अुनकी आंखें बंद हो गईं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और थोड़ी देर के लिए उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानों वे सब समाधि अवस्था में हों।

वीरचंद गांधी जैसे आदमी अगर भारतभूमि पैदा न करती तो हम हिन्दुस्तान के बड़प्पन का सन् सत्तावन के बाद कोई प्रभाव दूसरे देशोंपर न छोड़ पाते। बेशक हमारे देश ने कबीर जैसे सन्त पैदा किये पर ऐसों के दर्शन तो कोई विरला ही विदेशी पा सकता था। स्वामी रामकृष्ण क्या कभी अमेरिका जाने की सोच सकते थे? उस के लिये विवेकानन्द की ही जरूरत थी। वैसे ही त्यागी और मुनि जो किसी वजह से भारत- नहीं छोड़ सकते अुनके लिये दूसरों की जरूरत होती और अुन दूसरों में से अेक थे वीरचन्द गांधी।

वीरचन्द गांधी जैसे आदमी किसी जात या धर्म के नहीं समझे जाते। वह यह अच्छी तरह समझते हैं कि किसी देश, धर्म या समाज में पैदा हो जाना एक आकस्मिक घटना है जिनपर अुनका कोई वश नहीं चलता। वह यह भी अच्छी तरह समझते हैं कि सारे जगत का एक ही धर्म है। हाँ, अलग अलग नामधारी धर्म उस एक धर्म को अपने अपने ढंग से कहते हैं। जिस तरह एक आदमी की जीवनी अपने अपने ढंग से अनेक आदमी कह डालते हैं—वैसे ही एक धर्म की व्याख्या अपने अपने ढंग से अनेक धर्मावलम्बी कह डालते हैं या लिख डालते हैं। इस तरह के विचारों में डूबे वीरचंद गाँधी। यह ठीक है कि किसी एक धर्म की तरफ से ही वह शिकागो के सर्व धर्म सम्मेलन में शामिल हुए थे पर वहाँ पहुँच कर जिस तरह बोले उससे सारे भारत की इज्जत बढ़ी और अमेरिका के लोगों ने उनकी बातों को ऐसे ही अपनाया मानों वह ईसाको सुन रहे हों।

वीरचंद गाँधी ने अपने पीछे काफी साहित्य छोड़ा। वह कई भाषाओं के जानकार थे। चार भाषाओं में बोल सकते थे, दस और भाषाओं में काम चलाऊ पढ़ लेते थे। चौदह भाषाओं की जानकारी मामूली बात नहीं, पर हर शुद्ध हृदय के लिए वह मामूली बात है। आदमी को किसी एक विषय की लगन हो सकती है और उस विषय की खातिर वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक दो भाषा सीख सकता है, पर जिसे धर्म की लगन लग जाय, किसी नामधारी धर्म की नहीं, तो उस आदमी की रुचि हरभाषा के सीखने में लग सकती है। सब भाषाओं में धर्म के तत्वों का वर्णन अपने अपने ढंग से मौजूद है और उन सब ढंगों को जाने बिना कोई आदमी किसी अेक भाषा में भी धर्म की बात इस तरह नहीं कह सकता कि वह सबके मन लगती हो। वीरचंद ने धर्म तत्त्व का अध्ययन किया। इसलिये अंग्रेजी में लिखी हुई किताबें सब लोगों के काम की हो सकती हैं फिर चाहे वह किसी भी धर्म के अनुयायी क्यों न हों। क्योंकि उन किताबों के पढ़ने में वह रस जरूर आयगा जो उसे अपनें धर्म के पढ़ने से मिलता। हर धर्म में कहने की शैली का भेद होता है, धर्म भेद इतना नहीं होता। इस तत्व को वीरचंद गांधी खुब समझते थे। उनके ग्रंथों को हमने पढ़ा है, उनकी शैली में वड़ा आकर्षण है, सरलता तो है ही।

वीरचंद की तरफ पढ़े लिखे जवान खूब खिंचते थे, क्योंकि उनकी युक्तियाँ नई और जोरदार होती थीं और विचार एकदम मौलिक होते थे। संसार-चक्र को एक गति की परिधि मानकर जिस तरह उन्होंने स्वस्तिक को सिद्ध किया है, वह अपने ढंग की अनोखी चीज है। स्वस्तिक के चारों हिस्से चार गतियाँ हैं और स्वस्तिक सिर्फ इस बात के कहने का एक चिह्न है कि मनुष्य गतिमें ही आत्मा का निस्तार होगा, बड़ी अनोखी कल्पना है। उनके ग्रंथ पढने की चीज हैं। उनको पढ़कर आदमी में स्वतंत्र सोचने की इच्छा पैदा होती है और यह बात और ग्रंथों में देखने में कम आई है।

वीरचंद भारत माता की अपने ढंग की अलग देन थे। वह उन आदमियों में से एक थे जिन्हें सारा हिन्दुस्तान अपनाने में नहीं हिचकता और अपनाकर ऐसा अनुभव करता है मानों वह खुद ऊँचा उठ रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारत जैन महामण्डल वर्धा के लोक-प्रिय प्रकाशन

प्यारे राजा बेटा (भाग १ और २)	–रिषभदास रांका	॥=
जीवन जौहरी (स्व० जमनालालजी बजाज)	–रिषभदास रांका	१।)
गीता प्रवचन	–आचार्य विनोबा	
	मराठी—	१॥)
	हिन्दी—सजिल्द	२।)
	अजिल्द	१।)
धर्म और संस्कृति	–जमनालाल जैन	१।)
समाज और जीवन	–जमनालाल जैन	१)
बुद्ध और महावीर तथा दो भाषण	–कि. घ. मशरुवाला	१)
उज्ज्वल प्रवचन	–उज्ज्वल कुमारीजी	॥=
मणिभद्र (उपन्यास)	–उदयलाल काशलीवाल	१।)
महावीर वाणी (जैन गीता)	–(स्टॉक में नहीं)	
जो सन्तोंने कहा	–(स्टॉक में नहीं)	
सर्वोदय यात्रा	—आचार्य विनोबा	१।)
तत्त्व समुच्चय	–डॉ० हीरालाल जैन	२॥)
तत्त्वार्थ सूत्र	–पं० सुखलालजी	५॥)
महावीर का जीवन-दर्शन	–रिषभदास रांका	।=
आदर्श विवाह-विधि	–रिषभदास रांका –जमनालल जैन	।–
मारने की हिम्मत (कहानी संग्रह)	–म० भगवानदीन	१)
सलौना सच (भाग १-२) (बालकोपयोगी)	–म० भगवानदीन	प्रेस में
हमारे साथी (संस्मरण और जीवन-चित्र)	–म० भगवानदीन	१)
विचार-कण (विचार-सूत्र)	–म० भगवानदीन	प्रेस में
स्वाध्याय (मनोविज्ञान)	–म० भगवानदीन	प्रेस में

हमारे यहां पूर्वोदय प्रकाशन, हेमचंद मोदी ग्रंथमाला आदि की विचार प्रधान पुस्तकें भी मिलती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेखक की रचनाएँ

१. जवानो ! लेखों का संग्रह (प्रकाशित)
२. मारने की हिम्मत—कहानी संग्रह (प्रकाशित)
३. स्वाध्याय—मनोविज्ञान
४. सत्य की खोज—सत्यसंबंधी लेख
५. सलौना सच—बालकोपयोगी कहानियां
६. प्यारा प्रेम— ,, ,, ,,
७. मेरे साथी (१)—जीवन संस्मरण (प्रकाशित)
८. मेरे साथी (२)—जीवन संस्मरण
९. नीति के दोहे
१०. विचारकण
११. सफलता की चाबी (तत्त्वार्थ सूत्र का स्वतंत्र विवेचन)
१२. पागल चित्रकार (कहानी संग्रह)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे प्रकाशन यहां मिलते हैं—

रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई

भंडार, जयपुर रोड, अजमेर

पुस्तक भंडार, लेडी हार्डिंग रोड, नई दिल्ली

ज्ञानपीठ, लोहा डी, आगरा

५ साहित्य सदन, खजूरी बाजार, इन्दौर

६. मु साहित्य मंदिर, जवाहर गंज, जबलपुर

७. जैनेन्द्र प्रेस, ललितपुर (झांसी)

८. भारत जैन महामण्डल, २० गोडाउन स्ट्रीट, मद्रास १

९. अपना भंडार, नासिक-सिटी

१० सरस्वती पुस्तक भंडार हाथीपोल, अहमदाबाद

११. सेवाग्राम आश्रम, सेवाग्राम (वर्धा)

१२. ग्रामोद्योग, गांधीहाट, भद्र (अहमदाबाद)

१३. धर्मपाल जैन, दोघट (मेरठ)

१४. मानव साहित्य सदन, मुरादाबाद (यू. पी.)

१५. वाणीमंदिर, चौड़ा रास्ता, जयपुर

१६. जैन कुमार परिषद, जैन भवन, लोहामंडी, आगरा

१७. आत्मानंद जैन पुस्तक प्रचारक मंडल, रोशन मोहल्ला, आगरा

१८. पूर्वोदय प्रकाशन, ७/३६ दर्यागंज, दिल्ली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi